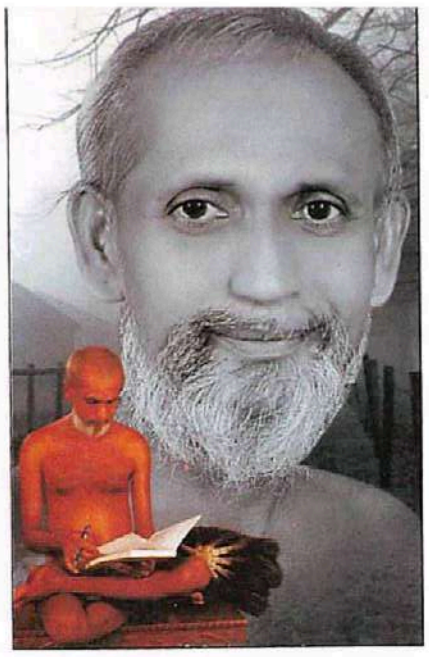

कामना की धूल भक्ति के दर्पण को
गन्दा कर देती है।

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

PRINTED BY
D.C. MIDIA NIKUNJ
TUNDLA (FIROZABAD) U.P.
Mob.9058017645

सती मनोरमा

148

23

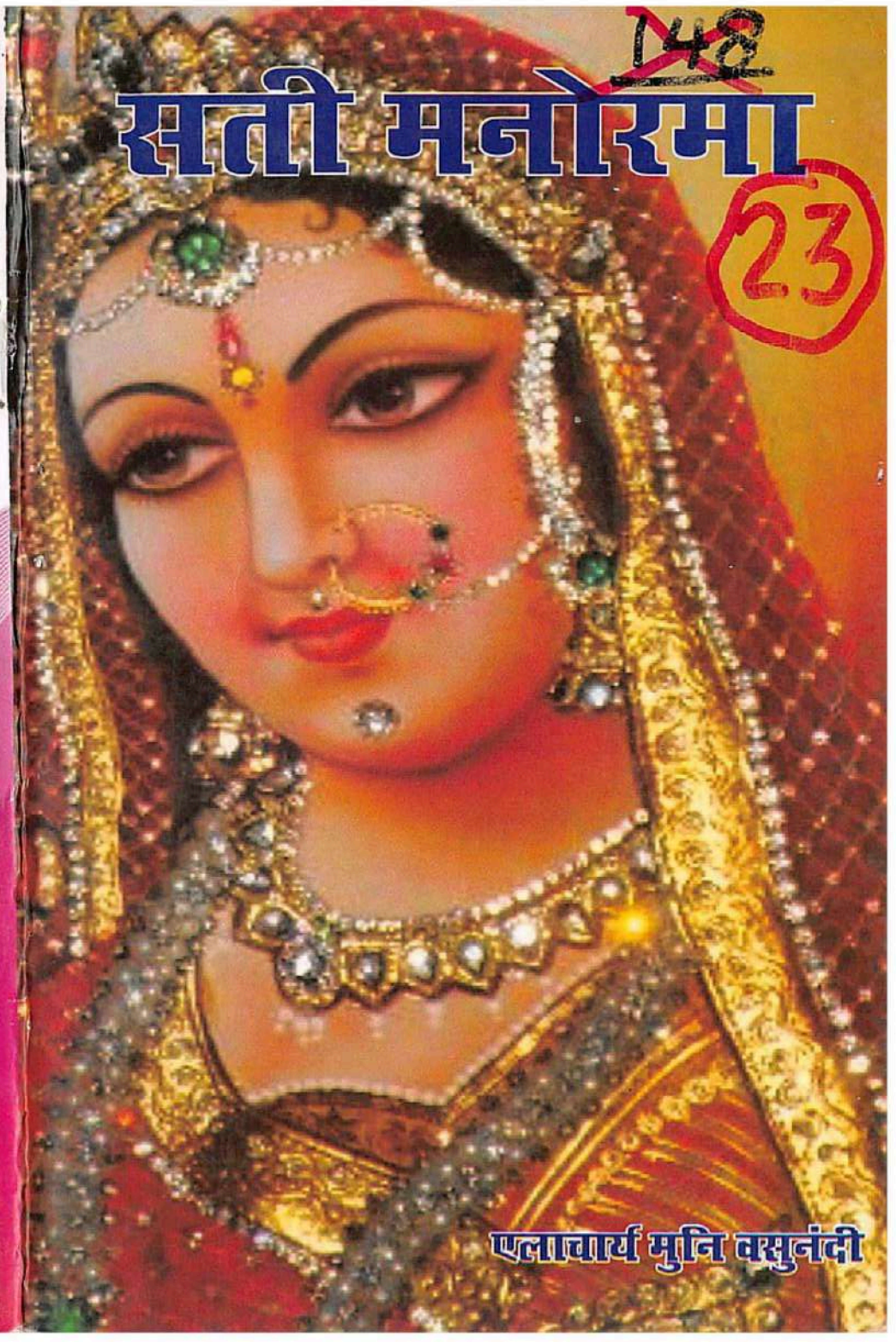

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

सती मनोरमा

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशक:
डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला
फिरोजाबाद उ०प्र०

कृतिः

सती मनोरमा

मंगलाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतापिच्छाचार्य
श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः

संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

प्रथम संस्करणः **अक्टूबर२०१०**
३००० प्रतियाँ

मूल्यः **२५ रुपये**

प्रकाशकः

डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद उ.प्र.

मुद्रकः

जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज'' मो० 9058017645

प्राप्ति स्थानः

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

अंक पहला, दृश्य पहला
(सम्मिलित प्रार्थना)

हम तो तेरे साथ नाथ गुण गायेंगे।
तेरे चरणों में मस्तक सदा नायेंगे।।
तू ही दुखिया के दुःख दूर करता प्रभो,
तू ही दुनियां में सुख शान्ति भरता प्रभो।
हमतो तेरे चरण की शरण पायेंगे।। हम तो0.....
सारी दुनिया में तेरा उजेला प्रला प्रभो।
तेरी करूणा से दुनियाँ का फैला प्रभो।
तेरी भक्ति में हम नाथ जुट जायेंगे।। हम तो.....
देना हमको सदा तू सहारा प्रभो,
कार्य होवे सफल सब हमारा प्रभो।
तेरे यश को 'रतन' जग में फैलायेंगे।। हम तो0.....

(प्रस्थान)

पूर्व कथाः-

उज्जैनी नगरी के सेठ महीदत्त ने अपनी गुणवती एवं रूपवती पुत्री मनोरमा के लिए योग्य वर की तलाश में विप्र को भेजा। तब एक बारह करोड़ दीनार की लागत से बना हुआ बहुमूल्य हार भी दे दिया और कह दिया कि जो कोई इस हार का सही मूल्य बताये उसी घर में मनोरमा का संबंध पक्का कर देना।

विप्र अनेक देशों का भ्रमण करता हुआ, भारत की विशाल नगरी वैजयन्ती में पहुंचा और वहां के प्रतिष्ठित सेठ धनपाल को उसने वह हार दिखाया।

इतना आकर्षक, बहुमूल्य हार एक साधारण ब्राह्मण के पास देख सेठ की नीयत में फर्क आ गया। उसके अपनी सेठानी को दिखाने के बहाने उस हार को घर में ले जाकर रख दिया और उसके बदले में उसी से मिलता जुलता दूसरा नकली हार लाकर विप्र को दे दिया और कह दिया कि इस हार का हम क्या करें, यह हार तो नकली है।

जैसे ही विप्र ने हार को देखा, ठगा सा रह गया। वह गिड़ गिड़ाकर सेठजी से कहने लगा 'सेठ जी'! यह हार मेरा नहीं है यह हार नकली है, मेरा असली हार मुझे दीजिये।

मगर सेठजी ने उसकी एक न सुनी और उल्टा विप्र को डरा धमका कर वहाँ से भगा दिया।

विप्र रोता-रोता राज दरबार में जा पहुंचा और महाराज के समक्ष इसकी

फरियाद की।

उस राज्य में इस तरह यह पहली ही घटना थी तथा सेठ धनपाल सरीखे नगर के धनी मानी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति पर सहसा इस तरह का अपराध नहीं थोपा जा सकता था।

'किन्तु विप्र का न्याय होना ही चाहिये' महाराज ने घोषणा की।

'मामला प्रतिष्ठित जौहरीं का है महाराज'! अतः इसकी जांच भी किसी जौहरी द्वारा ही कराई जाए। प्रधान ने सलाह दी।

सोच विचार के बाद सुखानन्द को इस योग्य चुना गया। सुखानन्द ने भी बहुत ही चतुराई के साथ समस्त जौंहरियों की मौजूदगी में विप्र का सच्चा हार सेठ धनपाल के घर से मंगा कर दरवार में पेश करते हुए अपनी योग्यता का परिचय दिया।

सेठ धनपाल अपराधी साबित हुये, अतः उन्हें दण्ड मिला। सुखानन्द की योग्यता पर मुग्ध हो विप्र ने वह हार सुखानन्द को टीके स्वरूप देकर मनोरमा का संबंध पक्का कर दिया।

शुभ मुहुर्त में मनोरमा का विवाह सुखानन्द के साथ विधिवत् सम्पन्न हुआ।

उसके बाद अब आप देखेंगे मनोरमा ने सुखानन्द के साथ जीवन संगिनी के रूप में।

उपरोक्त 'सच्चा न्याय' नाटक में अलग रूप से प्रकाशित हो चुका है।

दूसरा दृश्य

(**स्थानः**- वैजयन्ती नगरी! सुखानन्द का शयन कक्ष! समय अर्द्धरात्रि! सुखानन्द शैया पर लेटे हुये मनोरमा के आने की प्रतीक्षा कर रहे है। सहसा मनोरमा प्रवेश करती है।)

मनोरमाः- (सुखानन्द को जागृत अवस्था में देख, साश्चर्य) ओह! आप अभी तक जाग रहे हैं स्वामी?

सुखानन्दः- (बैठे होते हुए प्रसन्न मुद्रा में) हुंह! इसमें आश्चर्य की क्या बात है मनोरमे! रोज तुम भी तो जगा करती हो- मेरी प्रतीक्षा में। यदि एक दिन मैंने तुम्हारा प्रतीक्षा करली तो कौनसी बड़ी बात हो गई। (शैया पर बैठने का संकेत करते हुए).... आओ! इधर बैठो।

मनोरमाः- (शैया पर बैठती हुई, मधुर स्वर में) आपको कष्ट जो हुआ।

सुखानन्दः- (कंधे पर हाथ रखकर) और तुम्हें तो कष्ट होता ही नहीं होगा, क्यों?

मनोरमाः- (मुस्कुराती हुई) स्त्री का तो कर्तव्य होता है कि वह पति के सोने के बाद सोये, और पति के जगने से पूर्व जगे।

सुखानन्दः- (व्यंग पूर्वक) तभी तो नारी की सेवा ने पुरुष को आलसी एवं स्वार्थी बना

दिया है। (कुछ सोचते हुए) अच्छा, यह तो बताओ, कि आज आने में विलम्ब कैसे हुआ?

मनोरमाः- क्या करती! गृहकार्य से निवृत्त होने पर जब माता जी आज्ञा दें, तभी तो आ सकती हूं।

सुखानन्दः- (ठोड़ी छूते हुये) प्रिये! जिस पुरुष को तुम जैसे सर्वगुण सम्पन्न जीवनप संगिनी मिले, उसे बड़ा भाग्यशाली ही समझना चाहिये। मैं सच कहता हूं मनोरमे! तुम्हारे आने से यह घर स्वर्ग बन गया है।

मनोरमाः- (प्रसन्न मुद्रा में) पति के घर को स्वर्ग बनाना तो हर स्त्री का धर्म होता है, प्राणेश्वर! इसमें भला मैंने कौन सा प्रशंसनीय कार्य कर दिया, जो आप मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।

सुखानन्दः- तुम्हारी प्रशंसा तो आज सारे नगर में हो रही है, प्रियतमे! जिसे सुनकर मैं मन ही मन फूला नहीं समाता। तुम्हारे समान गृह लक्ष्मी को पाकर में गहरे संतोष का अनुभव कर रहा हूँ मनोरमे!

मनोरमाः- (नजरें नीचे की ओर झुकाकर) यह तो सब आपकी कृपा का फल है स्वामी! वरना मैं इस योग्य हूँ ही कहां! (सहसा चौंककर) ओह.....! क्या आज शयन नहीं कीजियेगा। रात्रि जो व्यतीत होने जा रही है।

सुखानन्दः- (गम्भीर मुद्रा में) शयन.....। शयन करते करते तो बहुत समय बीत गया है प्राणेश्वरी! अब आज की रात जागने में ही बीत जाये तो क्या हर्ज है।

मनोरमाः- (विस्मय पूर्वक) आज आपकी बातों में कुछ विचित्रता कैसे झलक रही है प्राणेश्वर! मैं नहीं समझ पा रही कि आप आपकी निद्रा का हरण किसने किया है।

सुखानन्दः- बात भी कुछ ऐसी ही है मनोरमे! और न मैं तुमसे कुछ छिपाना ही चाहुँगा।

मनोरमाः- (अधीरता पूर्वक) तो फिर शीघ्र बताइये स्वामी मेरा मन अधीर हुआ जा रहा है। क्या कहीं व्यापार में अधिक घाटा तो नहीं लग गया है? या किसी सुन्दरी की सुन्दरता ने आपका ध्यान आकर्षित कर लिया है। इसके सिवा निद्रा न आने का अन्य कारण भी क्या हो सकता है मेरे देव!

सुखानन्दः- (दिलासा देते हुये) इस तरह मन को अधीर न बनाओ प्राणप्रिये! ऐसा कुछ नहीं हुआ है। व्यापार तो सारा पिताजी की देख रेख में होता है। अतः उसमें मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं और जो तुमने किसी सुन्दरी की सुन्दरता की बात कही, सो मेरे लिये संसार में तुमसे बढ़ कर कोई अन्य सुन्दरी नहीं हो सकती।

मनोरमाः- (पुनः आग्रह पूर्वक) तो फिर जो बात है वही बताइये मेरे देव।

सुखानन्दः- (विचार व्यक्त करते हुये) बात यह है, मनोरमे! कि हमारे विवाह को हुये बहुत समय गुजर गया। और वह समय तुम्हारे साथ आनन्द पूर्वक आमोद-प्रमोद में बिता दिया। कभी अपने भविष्य के विषय में मुझे सोचने का अवसर ही नहीं मिला और

आनन्द मग्नता में मैं अपने कर्तव्य को भी भूल रहा हूँ। किन्तु आज सहसा मुझे अपने कर्तव्य की याद हो गई है। मेरा पौरुष आज मुझे ललकार रहा है।

मनोरमाः- (सन्तोष पूर्वक) अच्छा। अब मैं समझ गई आपकी बात को। यानि आप कुछ पुरुषार्थ करना चाहते हैं।..... यही ना?

सुखानन्दः- हां, प्रिये। मैं आज तक अपने पिताजी के कमाये हुये धन पर ही गुलछर्रे उड़ाता रहा। किन्तु अब मैंने पुरुषार्थ द्वारा धन कमाने का निश्चय किया है।

मनोरमाः- किन्तु नाथ! क्या आपके घर में कुछ धन की कमी है, जो आज आप पुरुषार्थ करने की सोच रहे हैं।

सुखानन्दः- तुम्हारा कथन ठीक है मनोरमे! किन्तु वह धन मेरी कमाई का नहीं है। उसे पिताजी ने अपने पुरुषार्थ द्वारा जमा किया है। इसके लिये किसी ने ठीक ही तो कहा है कि-

गुरू पिता की लक्ष्मी, होती मात समान।
जो भोगे घर बैठकर, बांधे पाप महान।।

और कि लक्ष्मी का क्या भरोसा? वह बड़ी चंचल होती है। एक जगह टिक कर रहना उसने सीखा ही नहीं। आज जो धन कुबेर दिखाई दे रहा है, भाग्य के फेर से वहाँ कल दाने दाने का मोहताज हो सकता है। पुरुषार्थ करना तो पुरुष का कर्तव्य होता है। मनोरमे! पुरुषार्थ हीन मनुष्य कायर अथवा निरे पशु के समान होता है। अतः मैं कुछ व्यापार करना चाहता हूँ।

मनोरमाः- स्वामी! यदि आपका ऐसा ही विचार है, तो आप अवश्य पुरुषार्थ कीजिये, मैं कभी मना नहीं करूंगी।

सुखानन्दः- लेकिन मैं पुरुषार्थ हेतु विदेश में जाना चाहता हूँ, हृदयेश्वरी।

मनोरमाः- (साश्चर्य) क्या कहा? परदेश जाना चाहते हैं आप? .....नहीं, नहीं। आप परदेश न जाइये प्राणनाथ। यहाँ रह कर ही व्यापार कीजिये।

सुखानन्दः- यहाँ तो सब पिताजी की इच्छानुसार करना पड़ता है। मनोरमे! स्वेच्छा से मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं अपने अनुभव के आधार पर स्वतंत्र व्यापार करके अपने भाग्य का परीक्षण करना चाहता हूँ। अतः इसके लिये मेरा विदेश जाना अत्यन्त आवश्यक है।

मनोरमाः- (आग्रह पूर्वक) नहीं ऐसी तो क्या बात है? आप पिताजी से कुछ धन लेकर अपना स्वतन्त्र व्यवसाय कर सकते हैं। इसके लिये क्या पिताजी मना कर देंगे आपको?

सुखानन्दः- नहीं मनोरमे! वे मना तो नहीं करेंगे किन्तु यहाँ के व्यवसाय से न तो विशेष लाभ ही होगा, और न ख्याति ही। हमारे देश की वस्तुएं विदेशों में ले जाकर बेचने में देश को अर्थ लाभ के साथ-साथ देश का नाम भी होता है। मैं देखता हूँ प्रिये, कि विदेशों के अनेक व्यापारी अपने यहां का माल लाकर हमारे यहां बेचते हैं और

हमारे यहां का माल अपने देश में ले जाते हैं। इस तरह वे लोग दौहरा लाभ उठाते हैं।

मनोरमाः- (कुछ सोचकर) ठीक है स्वामी! मैं आपके विचारों में बाधक तो नहीं बनती, किन्तु एक प्रार्थना है कि यदि आप व्यापार हेतु परदेश जाना ही चाहते हैं तो कुछ वर्ष और रुक जाइये, बाद में चले जाना।

सुखानन्दः- (दृढ़ता पूर्वक) केवल कुछ रात्रि ही बीच में शेष रही है प्राणप्रिये! सूर्योदय के साथ जो जहाज विदेश के लिये प्रस्थान करेंगे, उन्हीं में मैंने अपना स्थान सुरक्षित करा लिया है।

मनोरमाः- (साश्चर्य) ओ.....ऽऽ! तो आपने सब कुछ तैयारी भी कर ली है? क्या पिताजी ने अनुमति दे दी है, आपको?

सुखानन्दः- हाँ.....! पिताजी की स्वीकृति मिल चुकी है। माता जी से भी उन्होंने जिक्र कर दिया होगा। और फिर उन लोगों से आशीर्वाद लेकर ही तो प्रस्थान करूंगा।

मनोरमाः- (करूण स्वर में) किन्तु मैं कैसे सन्तोष करूं नाथ! जब कि आपके परदेश जाने की बात सुन मेरे दिल का समस्त धैर्य छूटा जा रहा है। हृदय मानों बैठा जा रहा है। (आजिजी पूर्वक) आप अपने इस इरादे को बदल ही क्यों नहीं देते स्वामी? (पांव पकड़ती हुई) जरा यह भी तो सोचिये प्राणाधार! कि मैं आपके बिना अकेली कैसे रह सकूंगी?

सुखानन्दः- (प्रेम पूर्वक) वैसे क्या तुम्हारी जुदाई मेरे लिये असह्य नहीं है मनोरमे? तुम्हें छोड़कर जाने का मुझे भी गहरा दुःख हो रहा है। .....किन्तु, क्या करूं? कर्तव्य का तकाजा जो है। उसकी, उपेक्षा कैसे की जा सकती है?

मनोरमाः- (दीनता पूर्वक) लेकिन कर्तव्य के साथ-साथ इस, अर्द्धांगिनी की ओर भी तो देखिये, जो आपके बिना अपूर्ण है। जिसका समस्त जीवन आपके हाथों बिका हुआ है क्या इसकी मांग को स्वीकार करना आपका कर्तव्य नहीं है? (रुदन करती है)।

सुखानन्दः- (ढ़ाढ़स बंधाते हुये) तुम रो रही हो मनोरमे! इस समय तुम्हें साहस और समझदारी से काम लेना चाहिये। जरा सोचो तो प्रिये! कि क्या यूं घर बैठे दूसरे के भाग्य का कमाया हुआ खाना निर्लज्जता नहीं? (दृढ़ स्वर में) अब मैं दुनियां की नजरों में कायर बनकर नहीं रहना चाहता। अतः अब मेरे इस सुविचार में बाधक न बनो मनोरमे! मुझे जाने दो अपने कर्तव्य के पथ पर।

मनोरमाः- (पुनः रुदन के साथ) इस तरह मेरी समस्त उमंगों और आशाओं पर पानी फेर कर जाना ही चाहते हैं, तो आप अवश्य जाएये। (त्यौंरी बदल कर) नाथ। यदि इसी प्रकार मुझे ठुकराना था, तो मुझे व्याह कर अपने संग क्यों लाये?

सुखानन्दः- (दिलासा देते हुये) इस प्रकार मन में कमजोरी न लाओ प्रियतमे!

आखिर मैं वणिक पुत्र हूं, व्यवसाय करना मेरा कर्तव्य है। वैसे तो विदेश जाने का विचार मैं बहुत पहले कर चुका था। किन्तु बीच ही में विवाह हो जाने के कारण अब तक रुका रहा। अब हमारे विवाह को भी बहुत समय बीत गया। आखिर अब भी मैं विदेश जाने की तीव्र इच्छा को पूरी नहीं करूंगा तो फिर कब करूंगा?

मनोरमाः- (रुख बदल कर) ठीक है स्वामी। यदि आपने जाने का दृढ़ निश्चय कर ही लिया है और किसी प्रकार रुकना नहीं चाहते, तो फिर मुझे भी अपने साथ ले चलिये। मैं छाया की तरह आपके साथ रहुंगी और आपकी सेवा भी करूंगी। मेरी इतनी सी विनय तो अवश्य स्वीकार कीजिये मेरे देव।

अगरचे आपका निश्चय अटल है तो यही कीजै।
कृपा कर इस चरण दासी को भी निज साथ लेलीजै।।
करूंगी आपकी सेवा, सभी दुःख सुख मैं सहलूंगी।
रखेंगे आप जैसे मुझको, मैं वैसे ही रहलूंगी।।

सुखानन्दः- (समझते हुये) हठ न करो हृदयेश्वरी। विदेश में तुम्हारा चलना कदापि ठीक नहीं है। वहां अनेक प्रकार के कष्ट एवं बाधाएं आती हैं। वे सब तुम्हारे लिये असह्य होंगे। और फिर हम दोनों चले जायेंगे, तो फिर यहाँ माता-पिता की सेवा कौन करेगा? लोगों को ऐसा कहने का अवसर न दो प्रिये 'कि खुद तो गया सो गया, स्त्री को भी साथ ले गया।'

विदेशों में मैं अपना भाग्य लेकर साथ जाऊँगा।
वहां दिन-रात निज पुरूषार्थ द्वारा धन कमाऊँगा।।
न छुउंगा कभी भूले से भी, अन्याय का पैसा।
धरम औ न्याय से धन को कमाकर लौट आऊँगा।।

मनोरमाः- (संतोष पूर्वक) अच्छा स्वामी। यदि आपका यही इरादा है तो, आप खुशी से जाइये। मैं अपने हृदय को वज्र बना लूंगी। किन्तु विदेश में जाकर मुझे भूल न जाना। वहां आपको अनेक प्रकार की स्त्रियां मिलेंगी उन सबको अपनी माता-बहिन के समान समझना एवं पवित्र जैन धर्म का सदा पालन करते रहना। धर्म ही आपका सहायक होगा।

धरम ही सार है, जग में, धरम मुक्ति का दाता है।
धरम मझधार को भव पार ले जाकर बिठाता है।।
धरम को भूलकर प्राणी जो निज जीवन बिताता है।
वह मानव जन्म दुर्लभ पाके भी, निष्फल गमाता है।।

सुखानन्दः- मैं धर्म को अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान समझूँगा। मनोरमें! मुझे जाने दो अपने कर्तव्य के पथ पर।

प्राण गर जाये तो जाये, धरम जा सकता नहीं।
यह सुखानन्द बे धरम, जीवन बिता सकता नहीं।।
मैं बहिन, माता ही समझूंगा सदा पर नारि को।
पाप मेरे मन में भूले से भी आ सकता नहीं।।

(सहसा चौंक कर, शैया से उठते हुये) ओह! शायद प्रभात होने आ गया है। आओ अन्दर चलें। मुझे जाने की तैयारी जो करनी है।

मनोरमाः- उठकर अच्छा। चलिये स्वामी।

(दोनों का अन्दर की ओर प्रस्थान)

तीसरा दृश्यः-

(स्थान-वैजयन्ती का राज भवन। राजकुमार कामसेव का एकान्त कक्ष। कुछ कुर्सियां तथा मेज रखी है। सहसा एक ओर से राजकुमार कामसेन आता है।)

कामसेनः- (कुछ घबराते हुये स्वर में, स्वतः) ओह.....

बनाया क्या विधाता ने, निराला छांट कर मुखड़ा।
उतर आया हो जैसे इस जमीं पर चांद का टुकड़ा।।

(मेज के सहारे खडे होकर) वाह। क्या गजब का रूप था। मानों कोई परी या किन्नरी ही धरती उतर आई हो। सौन्दर्य का इतना अपार वैभव मैंने आज तक किसी स्त्री के पास नहीं देखा। (कुछ रुक कर) और हां.....। पता लगाने पर यह भी मालूम हुआ कि उसका नाम मनोरमा है। वैश्य सुखानंद की पालि है वहाँ (उठकर इधर उधर टहलते हुये।)

देखा न कहीं हुश्न मैंने आज तक ऐसा।
जैसा कि आज देखकर दीवाना बना हूँ।।
महलों में सुखानन्द के रोशन है वह शमा।
उस ही शमा का आज मैं परवाना बना हूँ।।

(सहसा एक ओर से कामसेन का मित्र अजितसेन आ जाता है।)

अजितसेनः- (दूरही से, ठहाका मारकर) अ, ह, ह, ह,.....! क्या खुब। 'शमा..... और परवाना'। (कामसेन से) आज यह कैसा विचित्र अभिनय हो रहा है। राजकुमार? शमा.....? अरे भाई, शमा तो बड़ी निष्ठुर होती है। वह अपने प्रेमी परवानों की कभी परवाह ही नहीं करती। शमा का आलिंगन पागल परवानों के लिये कितना महंगा पड़ता है, कभी यह भी सोचा है। राजकुमार?

कामसेनः- (कुर्सी पर बैठते हुये) हुह। सब जानता हूँ मित्र अजित सेन! किन्तु कभी परवानों के प्रेम की पराकाष्ठा को भी देखा है?.....अपने प्राणों की आहुति देकर भी वे अपनी प्रेयसी (शमा) के आलिंगन को स्वीकार करते हैं।

अजितसेनः- (पास की कुर्सी पर बैठते हुये) लेकिन आज इन सब बातों से आपका

अभिप्राय क्या है कुमार? यह कैसा भूत सवार हो गया है आपके सिर पर? होशो-हवाश भी कुछ दुरुस्त नहीं दिखाई देते हैं आज तो।

कामसेनः- (स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए) हूंऽऽ बात तो कुछ ऐसी ही है मित्र। आज एक सुन्दरी के इश्क ने मुझे दीवाना बना दिया है।

अजितसेनः- (सहसा चौंक कर) सुन्दरी के इश्क ने?? छी.....छी.....छी....। आज आप यह कैसा उल्टा राग अलाप रहे हैं कुमार!

कामसेनः- क्या करूँ मित्र अजितसेन? चाहे तुम उलटा समझो या सुलटा।

जो लगा कलेजे तीर मेरे, वह तीर जिगर के पार हुआ।
सोना-जगना, खाना-पीना और जीना भी दुश्वार हुआ।
जब तक न मिलेगी वह मुझको, नहीं चैन जरा मैं पाऊंगा।
अब मदद करो वरना सचमुच, मैं तड़फ-तड़फ मर जाऊँगा।

अजितसेनः- (मुंह फेरकर, स्वतः) ओफ.....! बड़ी विकट समस्या है। (कामसेन से) मगर जरा यह तो बताओ, कि आखिर वह है कौन? जिसके लिये तुम इस कदर बेताब हो रहे हो?

कामसेनः- (सरलता से) मनोरमा। वैश्य सुखानन्द की पत्नी।

अजितसेनः- (हैरत के साथ) मनोरमा.....?

कामसेनः- हां-मित्र। कल संध्या को मैं नियमानुसार पुष्पवाटिका की ओर जा रहा था तो मार्ग में एक भवन की अट्टालिका पर वह सुन्दर नव यौवना अपने बालों को सुखा रही थी। पूछने पर मालूम हुआ कि वह वैश्य सुखानन्द की पत्नी है और उसका नाम मनोरमा है। बस, तभी से मेरा मन विचलित हो रहा है। लाख प्रयत्न करने पर भी उसका ध्यान मन से नहीं हटता। मित्र! जैसे भी हो वह सुन्दरी मुझे मिलनी ही चाहिये।

अजितसेनः- (तेज स्वर में) आग से खेलना चाहते हो कुमार। मनोरमा नगर प्रतिष्ठित एवं राज्य सम्मानित श्रेष्ठि की पुत्र वधू है। साथ ही पतिव्रता एवं शीलव्रती। उसकी ओर पाप भी दृष्टि उठाना सख्त गुनाह है, पाप है, आप इस विचार को अपने दिल से निकाल दीजिये।

कामसेनः- (चौंककर) क्या कहा? इस विचार को दिल से निकाल दूं? (उपेक्षा पूर्वक हंसते हुये) हँ हँ हँ हँ। ना मुमकिन। असंभव, सर्वथा असंभव।

आँख में तस्वीर उसकी, दिल में उसकी याद है।
बिन मिले उस सुन्दरी के, जिन्दगी बरबाद है।।

अजितसेनः- (समझाने के तौर पर) जरा विवेक से काम लीजिये कुमार।

सती नारियों को सताना बुरा है।
नजर उनपे दूषित उठाना बुरा है।।
यौं जोशे जवानी की मद होशियों में,
सितम जालिमाना यूं ढना बुरा है।।

सती नारियों को सताना बुरा है।।

कामसेनः- (गर्व के साथ) बुरे और भले की हमें कोई परवाह नहीं। आखिर हम भी यहां के राजकुमार हैं।

अजितसेनः- राजकुमार का फर्ज प्रजा की बहू बेटियों की असमत लुटना नहीं होता, उनके सतीत्व की रक्षा करना होता है।

सताते हैं जो सतियों को, नहीं वे चैन पाते है।
जमाने भर की बदनामी ही अपने शिर उठाते हैं।।
सताया राम की पत्नी को रावण ने है जग जाहिर।
हुआ क्या अन्त उसका, क्यों इसे प्रिय भूल जाते हैं।।

कामसेनः- (निराश होकर) हुह। मैंने तो सोचा था, कि तुम इस कार्य में मेरी कुछ मदद करोगे। किन्तु तुमने तो मुझे उल्टा उपदेश सुनाना शुरू कर दिया। अजितसेन! मुझे न तो तुम्हारी मदद की ही जरूरत है, और न उपदेशों की ही मैं स्वयं अपना रास्ता तय करूँगा।

हो करके, मित्र भला मुझको, तुम बातों में भरमाते हो।
मैं देखुंगा उस शीवती को, जिसका भय दिखलाते हो।।
हम दर्द समझ कर ही तुमको, मैंने यह दिल की बात कहीं
मेरे दिल में है आग लगी, तुम और नमक छिडकाते हो।।

अजितसेनः- (शीघ्र उत्तर देते हुये) कुमार.....

वह दोस्त नहीं है दुश्मन है, जो उलटी राह बताता है।
पथ भूले साथी को उलटा फिर और अधिक भटकाता है।
मैंने कर्तव्य समझ कर ही, तुमको यह सच्ची बात कही।
हर कदम उठाने से पहले कुछ सोचा समझा जाता है।।

कामसेनः- (पुनः उपेक्षा पूर्वक) सब सोच लिया। सब समझ लिया ऐसी अपने आपको पतिव्रता और शीलवती बताने वाली बहुत देखी है मैंने। भला कौन स्त्री है जो अपने आपको पतिता एवं दूराचारिणी बतायेगी। अब मैं वही करूंगा, जिसे करने को मेरा दिल मजबूर करेगा।

अजितसेनः- (उठते हुये) तो फिर ठीक है। जैसा जी चाहे कीजिये, मेरी बला से! (चलते हुये) अच्छा, अब मैं जा रहा हूं, फिर कल मिलूंगा।

कामसेनः- (नाराजगी से) .....ठीक है।

(अजितसेन का एक ओर प्रस्थान)

कामसेनः- (बैठते हुये, स्वतः) हुह.....

(कुछ सोचकर प्रहरी को बुलाते हुये) प्रहरी।

प्रहरीः- (आकर अविनय) आज्ञा कीजिये कुमार साहब।

कामसेनः- (आदेश पूर्वक) जाओ, शीघ्र जाकर कुन्था दूती को यहाँ लेकर आओ।

प्रहरीः- (नत मस्तक होकर) जैसी आज्ञा कुमार साहब।

(प्रहरी का एक ओर प्रस्थान)

कामसेनः- (स्वतः) जब तक कुन्था आये, तब तक मैं एक पत्र मनोरमा के लिये लिखकर तैयार करता हूँ।

(कामसेन बैठकर पत्र लिखने लगता है, कुछ ही देर बाद प्रहरी, कुन्था दूती को लेकर आ जाता है।)

कुन्थाः- (दूर ही से) जुग-जुग जीयें मेरे छोटे सरकार। हजारी उमर हो सरकार की।

महरवानी हुई जो आज मुझको याद फरमाया।
हुकुम अब दीजिये किस काम से कुन्था को बुलाया।।

कामसेनः- (पत्र बन्द करते हुये) हां, आओ कुन्था। आज तुमसे एक जरूरी काम आ पड़ा है।

कुन्थाः- जरूरी काम? और वह भी कुन्था से? हें हें, हें हें.....

कामसेनः- हाँ, हाँ कुन्था। यह काम सिवा तुम्हारे अन्य कोई कर भी नहीं सकता।

कुन्थाः- तो फिर बन्दी हाजिर है सरकार। हुकुम कीजिये।

कामसेनः- देखो कुन्था। हमारा दिल वैश्य सुखानन्द की पत्नी मनोरमा पर आ गया है। और जब तक वह सुन्दरी हमें नहीं मिलती हमारी परेशानी भी दूर नहीं हो सकती।

आंख में सूरत है उसकी, लब पे उसका नाम है।
अब उसे लाकर मिलाना, यह तुम्हारा काम है।।

कुन्थाः- (लापरवाही से) बस.....। इतनी सी बात के लिये आप इतने परेशान हैं सरकार? आप जरा धीरज रखिये, आज ही आपकी मुराद पूरी हो जायेगी।

जिसकी है चाह तुम्हें मालिक, मैं पास उसी के जाती हूँ। जिस तरह पटेगी उसी तरह, मैं उसे पटाकर लाती हूं।

इस फन में कितनी माहिर हूँ, यह बात आज बतलानी है। में पत्थर से पत्थर दिल को, क्षण भर में मोम बनाती हूं।

कामसेनः- अब हमें विश्वास हो गया है कुन्था, कि तुम अवश्य हमारा काम बनाकर आओगी।

कुन्थाः- (गर्व के साथ) इसमें सन्देह कि क्या बात है सरकार।

कितनों के काम बनाये है आशिक दिल यह सब जानते हैं।
यूं लोग मेरा चातुर्य देख,सब जादूगरीनी मानते हैं।।

कामसेनः- (मुस्कान के साथ) अच्छा तो जादूगरनी। आज हमें भी तुम अपने जादू का करिश्मा दिखाओ।

करिश्मा आज देखेंगे, तुम्हारी जादुवाई का।

पता चल जाएगा कुछ देर में, सब कुछ सच्चाई का।।

(कुछ सोच कर) लेकिन कुन्था .....(कहते कहते रुक जाते हैं।)

कुन्थाः- हां, हां। कहिये ना सरकार। आप क्या कहना चाह रहे थे?

कामसेनः- कुन्था! अजितसेन कह रहा था 'मनोरमा शीलवती है, पतिव्रता है। उसने जैन मुनियों से शील की प्रतिज्ञा ली हुई है।'

कुन्थाः- हु हु! ये तो सब स्त्रियों के ढ़ोंग होते हैं कुमार साहब! मैंने इस उम्र में न जाने कितने ही बड़े घरों की बहू बेटियों को रास्ते पर लगा दिया, जो अपने आपको शीलवती और पतिव्रता बताती थीं। फिर भला यह मनोरमा कौन से खेत की मूली है। आप निश्चिन्त रहिये, आपका काम बनाकर आऊंगी, और अपना इनाम पाऊंगी।

कामसेनः- जरूर! जरूर! तुम्हें मुंह मांगा इनाम मिलेगा कुन्था। अब तुम विलम्ब न करो। (कुछ याद आने पर) अरे हां! (जेब से पत्र निकाल कर देते हुये) यह लो पत्र! इसे मनोरमा को दे देना, और साथ ही उत्तर भी लिखा कर लेती आना।

कुन्थाः- (पत्र लेकर) जैसी आज्ञा, हुजूर! मैं जा रही हूं।

(कुन्था का सविनय प्रस्थान)

कामसेनः- (दूती के चले जाने पर) चलो.....दूती भी गई। अब देखते हैं क्या होता है।

(शीघ्रता से अन्दर की ओर प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

दृश्य चौथा

(स्थान- वैजयन्ती में श्रेष्ठि महीपाल का भवन। मनोरमा अपने कक्ष में कार्यरत दिखाई देती है। सहसा मनोरमा की दासी चपला प्रवेश करती है।)

चपलाः- (मनोरमा से) कुंवरानीजी! बाहर एक बुढ़िया खड़ी है और वह आपसे मिलना चाहती है।

मनोरमाः- (चपला की ओर मुखरित होकर).....मुझ से मिलना चाहती है तो उसे ले क्यों नहीं आई यहां?

चपलाः- कुंवरानी जी! उसका चेहरा बड़ा खतरनाक सा लगा, इसलिये मैं नहीं लाई।

मनोरमाः- (लापरवाही से) अरी खतरनाक होकर हमारा क्या करेगी? जा, ले आ उसे।

चपलाः- (सविनय) जैसी आज्ञा। (दासी जाती है। और क्षण भर में कुन्था को लेकर लौट आती है।)

मनोरमाः- (चपला के साथ कुन्था को देख कुन्था से) पांव लागू मांजी।

कुन्थाः- (एक हाथ आगे बढ़ाकर) जुग जुग जीओ बहूरानी। तुम्हारा सुहाग अमर रहे।

मनोरमाः– (कुर्सी पर बैठने का संकेत करती हुई) इधर बैठो मांजी। कहिये कैसे आना हुआ?

कुन्थाः– (कुर्सी पर बैठती हुई) एक बहुत ही जरूरी काम से आई हूं बहूरानी! (चपला की ओर संकेत करके) पहले इसे बाहर भेज दो, तो फिर बताऊँ।

मनोरमाः– (चपला से) चपला! तू जरा बाहर चली जा।

चपलाः– अच्छा, कुवंरानी जी।

(चपला का प्रस्थान)

कुन्थाः– (मनोरमा को खड़ी देख) अरे.....। तुम तो खड़ी हो। बैठो ना बहूरानी।

चपलाः– (नैपथ्य से) अगर कहीं मेरी जरूरत हो तो आवाज दे देना कुंवरानी जी।

मनोरमाः– (मुस्कुराती हुई) अच्छा.....अच्छा। (कुछ याद आने पर) अरे.....मैं तो आपके लिये शरबत मंगाना ही भूल गई। गरमी में आई हो भला। (चपला को बुलाती हुई) अरी चपला। जरा आना तो।

चपलाः– (नैपथ्य से) अभी आई कुंवरानी जी।

(सहसा चपला हाथ में वस्त्र धोने का डंड़ा ताने, तेजी से चली आती है।)

मनोरमाः– (चपला के हाथ में डंडा देख) अरी। यह डंड़ा क्यों ले आई?

चपलाः– (झेंप के साथ) ओह। हें, हें, हें। मैंने समझा.....नहीं, नहीं.....कुछ नहीं। यह तो वैसे ही हाथ में चला आया।

मनोरमाः– अच्छा, तो पहले एक गिलास शरबत तो लाकर दे मांजी को।

चपलाः– (व्यंग पूर्वक) स.....स.....शरबत। मांजी को।

मनोरमाः– हां, हां। जल्दी लेकर आ।

चपलाः– (जाती हुई) अच्छा कुंवरानी जी। ला रही हूँ।

(चपला का प्रस्थान)

कुन्थाः– (मनोरमा से) बड़ी वाचाल औरत है यह दासी।

मनोरमाः– ऐसे ही है मांजी। बचपन से ही इस घर की सेवा कर रही है। हां, जरा चंचल जरूर है।

(चपला शरबत का गिलास लाकर कुन्था को देकर अन्दर चली जाती है।)

कुन्थाः– (शरबत पीकर गिलास एक ओर रखती हुई) बहूरानी में तुम्हारे लिये खुशी का पैगाम लेकर आई हूं।

मनोरमाः– (साश्चर्य)....खुशी का पैगाम।

कुन्थाः– हां, बहूरानी। सुनोगी तो बाग-बाग हो जाओगी।

मनोरमाः– क्या विदेश से पतिदेव का कोई सन्देशा आया है?

कुन्थाः– हुह! तुम भी किस निर्दयी की बात कर रही हो बहूरानी। भला इस उम्र में इस तरह अकेली तड़फती छोड़ कर चला जाये.....। कभी उसको तो भूलकर भी

याद नहीं करना चाहिये।

मनोरमाः– मांजी! वे पुरुष हैं। पुरुष को पुरुषार्थ के निमित्त न जाने कहां कहां जाना पड़ता है। और वे भी व्यापार के लिये परदेश गये हैं। मैंने प्रसन्नता से उन्हें विदा किया है। उन्होंने कोई मेरे साथ दगा नहीं किया।

कुन्थाः– स्त्रियां ऐसे ही तो पुरुषों से अपने को ठगाया करती हैं। पुरुष बड़े चालाक़ होते हैं। परदेश में जाकर वे न जाने कितनी ही सुन्दरियों से प्रीत जोड़ते हैं। मन चाही रंग रेलियां करते है वर्षों परदेश में ही गुजार देते हैं। और इधर उनकी पत्नियां (जो समझदार और चालाक होती हैं, वे नहीं) तुम जैसी बुद्धू। ऐसे जीवन की मस्ती भरी रातों को तारे गिन गिन कर काटती रहती हैं। यौवन की सुनहरी घडियों को विरह की आग में दफनाती हैं। वरना.....

मनोरमाः– (बीच ही में बात काटती हुई) छोडिये मांजी, इस बात को। यह तो सब अपने मन पर निर्भर होता है। भारतीय नारियाँ त्याग पूर्वक जीना जानती हैं। भारतीय संस्कारों में सहन शक्ति की प्रेरणा विद्यमान है। पतिव्रत धर्म के महत्व को समझने वाली नारियां सब कुछ सहन कर सकती हैं।

कुन्थाः– (निराशा पूर्वक स्वतः) ओह! इस पर तो मेरी बातों का कुछ भी असर होता दिखाई नहीं देता। (त्यौरी बदल कर) अरी बहुरानी! इन थोथी बातों में क्या रखा है। यह जवानी बार बार आने वाली नहीं है। कुछ समझ से काम लो। (पत्र निकाल कर देती हुई) लो! यह पत्र यहां के राजकुमार ने दिया है। वह तुम पर जी जान से कुरवान है। पल-पल तुम्हारी याद में बिता रहा है। यह पत्र पढ़कर इसका जवाब लिख कर मुझे दे दो।

(मनोरमा मन ही मन पत्र पढ़ती है।)

मनोरमाः– (उठकर, आग बबूला होती हुई) ऐ बुढ़िया! क्या तू ऐसे लोगों की दलाली करती फिरती है। तुझे शर्म नहीं आती इस उम्र में ऐसे काम करते हुये।

कुन्थाः– (खड़ी होकर) इसमें शर्म की क्या बात है बहुरानी! मैंने तो तुम्हारे फायदे की बात सोची थी। किसी ऐसे वैसे आदमी की तो बात है नहीं। वह यहां का राजकुमार है। उसके यहां किस बात की कमी है। सभी प्रकार के सुख भोगोगीं।

मनोरमाः– (पुनः क्रोध पूर्वक) आग लगे ऐसे सुख को। मुझे नहीं चाहिये ऐसा सुख। अब तुम यहां से शीघ्र चली जाओ वरना धक्के देकर निकलवा दूंगी।

कुन्थाः– इतना क्रोध न करो बहुरानी! (कुछ सोचकर) अच्छा तो इस पत्र का उत्तर तो लिखकर दे दो।

मनोरमाः– (कुछ सोचकर) बैठो। मैं लिखकर लाती हूँ।

(मनोरमा अन्दर जाती है और कुछ ही देर में पत्र का उत्तर लिखकर लाती है।)

मनोरमाः- (कुन्था को पत्र देती हुई) ले। दे देना तेरे उस राजकुमार को। और कह देना कि आइन्दा ऐसी हरकत करेगा तो उसका परिणाम ठीक नहीं होगा।

कुन्थाः- (पत्र लेकर) लेकिन याद रखना बहुरानी! कि राजकुमार की इच्छा को ठुकराना तुम्हारे लिए बहुत मंहगा पड़ेगा।

मनोरमाः- (सक्रोध) अब सीधी तरह चली जा बे शरम। वरना दुर्दशा कराके निकालूंगी।

कुन्थाः- (बिगड़ कर) जरा जुबान पर लगाम दो बहुरानी! बहुत बढ़ बढ़ के बोले जा रही हो। खबरदार जो आगे कुछ कहा।

मनोरमाः- (चपला को बुलाती हुई) अरी चपला! जरा आना तो।

चपलाः- (नैपथ्य से) अभी आई कुंवरानी जी।

(चपला का प्रवेश)

मनोरमाः- (कुन्था की ओर संकेत करके) इस हरामखोर को लात घूंसे लगा कर बाहर निकाल दें।

चपलाः- अभी लो कुंवरानी जी! (कुन्था का हाथ पकड़ कर) क्योंरी दूती की बच्ची। क्या विचार है अब तेरा।

(लात घूसों से कुन्था को मारती हुई बाहर ले जाती है। कुन्था के सारे वस्त्र फट जाते हैं, तथा वह लहुलुहान होकर रोती चिल्लाती अपने घर की ओर जाती है)।

दृश्य पांचवां

(**स्थान** – राजकुमार कामसेन का एकान्त कक्ष! कामसेन कुछ चिन्तित बैठा है। एक ओर से अजितसेन प्रवेश करता है।)

अजितः- (कामसेन को चिन्तः मग्न बैठा देख) कहिये राजकुमार! आज किस चिन्ता में मग्न हो?

कामसेनः- (कुछ सम्भल कर) आओ अजितसेन! दिल पर जो गुजर रही है, वह दिल ही जानता है दोस्त।

अजितः- (पास की कुर्सी पर बैठते हुये) तो मनोरमा वाले मामले का क्या हुआ?

कामसेनः- क्या बताऊँ दोस्त! बहुत दिन पहले कुन्था दूती को मैंने मनोरमा के पास भेजा था। किन्तु आज तक वापस ही लौट कर नहीं आई।

अजितः-(साश्चर्य) हैं, क्या? तुम यह क्या कह रहे हो मित्र! कुन्था लौटकर ही नहीं आई, तो आखिर उसका हुआ क्या? कुन्था, कोई ऐसी वैसी दूती तो है नहीं। बहुत ही चतुर और तेज औरत है वह। कहीं बीमार तो नहीं हो गई।

कामसेनः- हाँ! कोई न कोई कारण तो अवश्य ही हुआ है। वरना आये बिना नहीं रहती।

(सहसा एक ओर से कुछ लंगड़ाती हुई, कुन्था आती दिखाई देती है।)

अजितः– (कुन्था को आती देख) लो, बड़ी उमर है कुन्था की, वह आ ही गई।

कुन्थाः– (मुंह बिगाड़ती हुई) वरना मरने में कुछ कसर तो रही नहीं थी।

कामसेनः– (उतावले स्वर में) क्यों? ऐसी क्या बात हुई कुन्था! तुम लंगड़ा कैसे रही हो?

कुन्थाः– (हाथ, पांव के जख्म दिखाती हुई) लंगड़ा ही नहीं रही हूँ, जरा देखिये तो सरकार। क्या दुर्दशा की है मेरी।

बनाई दुर्दशा मेरी, किया अपमान भी भारी।
गई थी आपकी खातिर, मगर यूं ही गई ख्वारी।।

कामसेनः– (सक्रोध) क्या यह सब मनोरमा की ओर से हुआ है?

कुन्थाः– और किसकी ओर से होता सरकार! जैसे ही मैंने उसके समक्ष आपकी हार्दिक इच्छा जारि की, वह सहसा 'आग बबूला' हो उठी। अपनी दासियों को बुलाकर डंडे और लात घूंसों द्वारा मेरी यह हालत करा दी सरकार।

कामसेनः– (तसल्ली देते हुये) घबराओ नहीं कुन्था। अपमान तुम्हारा नहीं हमारा भी हुआ है। हम उसे इस अपमान का बदला ऐसा चुकायेंगे, कि उम्र भर वह याद रखेगी।

(कुछ सोचकर) हां मगर तुम इतने दिन क्या करती रही?

कुन्थाः– घर में पड़ी-पड़ी अपने जख्मों को सेकती रही। जब आज कुछ चलने सरीखी हुई, तब आपकी खिदमत में हाजिर हुई हूँ, कुमार साहब।

अजितः– (हंसते हुये, व्यंग में) मगर आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस कुन्था ने अपने जीवन में अनेक स्त्रियों के शील भंग करा दिये होंगे आज उसी की इतनी करारी हार.....? कुन्था! तुम्हारी इस दशा पर हमें दुःख भी होता है और हंसी भी आती है। क्या तुम्हारी उस योग्यता में कुछ कमी आ गई है?

कुन्थाः– पांचों उगलियां इकसार नहीं होतीं अजितसेन जी! जिस स्त्री ने कभी घर के बाहर पांव नहीं रखा, उसे बाहिरी वातावरण का क्या पता? फिर हमारे देश की बहुत स्त्रियां अपने प्रण की पक्की होती हैं। जिस बात की प्रतिज्ञा कर लेती हैं, उसे जी जान से निभाती हैं। पूर्ण धार्मिक आस्था होती है उनमें। ऐसी स्त्रियों का रुख बदलना आसान काम नहीं होता। कुछ नरम दिल की स्त्रियां जिनका कि धर्म पर पूरा विश्वास नहीं होता, अपने ढ़िल-मिल स्वभाव के कारण प्रभाव में आ जाती हैं।

अजितः– अब रहने दो कुन्था ये सफाई की बातें। 'अंगूर नहीं मिलने पर खट्टे होते हैं।'

कामसेनः– (याद आने पर) और हां। हमारे उस पत्र का क्या हुआ कुन्था? क्या उसने पत्र का उत्तर नहीं दिया?

कुन्थाः– (चौंक कर) ओह! मैं तो भूल ही गई थी। (पत्र निकाल कर देती हुई) लीजिये

सरकार! आपके पत्र का उत्तर तो मैं उससे ले ही आइ।

(कामसेन पत्र ले लेता है)

कामसेनः- (अजितसेन को पत्र देते हुये) लो मित्र! जरा इस पत्र को पढ़ डालो। देखो क्या लिखा है उसने?

अजितः- (पत्र लेकर पढ़ते हुये) हां.....पत्र में लिखा है.....भाई कामसेन।

आपका पत्र मिला। यद्यपि पत्र उत्तर देने योग्य नहीं है किन्तु यह सोचकर कि शायद मेरे उत्तर को पढ़कर आप अपनी भूल का प्रायश्चित कर सकें। बस इस विचार पर पत्र का उत्तर दे रही हूं। साथ ही आपने अपने पत्र में मेरी विशेष प्रशंसा करके मेरे शील में दोष लगाया है, अतः यह उत्तर लिख कर मैं उससे मुक्त होना चाहती हूं। राजा पिता तुल्य होता है, और राजकुमार भाई समान। किन्तु आपने न जाने किस भ्रम में पड़कर मुझे ऐसा पत्र लिखा है, जो आपकी प्रतिष्ठा एवं पद में कलंक स्वरूप है।

आप राजकुमार है। प्रजा की बहू बेटियों की इज्जत की रक्षा करना आपका फर्ज है, कि अपने कर्तव्य से विमुख हो स्वयं ही इज्जत लूटने का प्रयास शुरू कर दें।

आशा है, अपने विवेक को ठीक रखकर भविष्य में मेरे प्रति ऐसी गलत धारण नहीं बनायेंगे। इसी में आपकी भलाई है।

आपकी बहिन 'मनोरमा'

कामसेनः- (उपेक्षा भाव से) हुह! ये तो स्त्रियों के सब नाज नखरे हैं दोस्त।

अजितः- (उठते हुये) खैर जो कुछ भी हो। हम तो चल दिये। कल फिर मिलेंगे।

कामसेनः- (रूखेपन से) अच्छी बात है।

(अजितसेन जाते जाते ओट में खड़ा रह जाता है।)

कुन्थाः- (करबद्ध) अब क्या हुकुम है सरकार! मैं तो इधर की रही न उधर की। बुढ़ापे में आकर यह मिट्टी पलीत और कराली।

कामसेनः- (कुछ सोचकर) हां.....ठीक है कुन्था। अब तुम्हे एक काम करना होगा।

कुन्थाः- (सादर) हुकुम कीजिये सरकार।

कामसेनः- (समझाते हुये) तुम्हें मनोरमा की सास के पास जाना होगा और उसे कहना होगा कि आपकी बहू मनोरमा का यहां के राजकुमार के साथ अनुचित संबंध है। उन्हें पूर्ण विश्वास दिलाने के लिये यहाँ तक कह देना कि मैंने मनोरमा को राजकुमार के यहां आते-जाते और प्रेमालाप करते अपनी आंखों से देखा है। तब आपके घर की इज्जत मिट्टी में मिलती देख, आपके कानों में यह बात डालने के लिये ही, यहाँ तक दौड़ कर आई हूँ।

कुन्थाः- (तारीफ करती हुई) क्या कहने छोटे सरकार के। क्या तदबीर सोची है कि

कमाल।

कामसेनः- बस, अब तुम शीघ्र जाओ, और चतुराई के साथ सारी बात मनोरमा की सास के दिमाग में बिठाकर आओ।

कुन्थाः- अभी जाती हूँ सरकार! उस शीलवन्ती के बोरिये-बिस्तर बाहर नहीं करवा दिये तो मेरा नाम कुन्था नहीं।

(कुन्था तेजी से एक ओर चली जाती ह। अजितसेन भी ओट में से निकल दूसरी ओर चला जाता है।)

दृश्य छटवां

(स्थान- सेठ महीपाल के भवन का एक कक्ष। सेठ महिपाल (सुखानन्द के पिता) क्रोध मुद्रा में बैठे दिखाई देते हैं। सहसा एक ओर से सारथी प्रवेश करता है।)

सारथीः- (आकर, करबद्ध) आज्ञा कीजिये श्रेष्ठिवर।

महीपालः- (सारथी से, गुस्से में) हां.....सारथी! तुम्हें एक काम करना है।

सारथीः- (सविनय) फरमाइये- मालिक।

महीपालः- (आदेश पूवर्क) तुम्हें इसी समय मनोरमा को रथ में बिठा कर भयानक वन में छोड़ आना होगा। जहाँ से वह वापस लौटकर यहां नहीं आ सके।

सारथीः- (साश्चर्य) आज आप यह कैसा आदेश दे रहे हैं मालिक? सती मनोरमा को भयानक वन में छोड़ आऊँ?

महीपालः- (सक्रोध) उसे अब सती मत कहो! वह सती नहीं, दुराचारिणी है! पतिता है!! उसे सती कहने पर सतित्व पर लांछन लगता है।

सारथीः- आज तक जो मनोरमा, आपकी नजरों में परम शीलवती एवं सदाचारिणी थी वही सहसा आज दुराचारिणी कैसे हो गई श्रेष्ठिवर?

महीपालः- उसने हमारे घर को कलंकित करने वाला कार्य किया है सारथी! अब उसके लिये इस घर में कोई स्थान नहीं है।

सारथीः- (नम्रता पूर्वक) मनोरमा जैसी देवी और घर को कलंकित करने वाला कार्य करे यह बात सहमसा समझ में नहीं आती मालिक! फिर उसने ऐसा कौनसा अनुचित कार्य किया, जिससे उसे कलंकिनी ठहरा रहे हैं आप?

महीपालः- (समझाने के तौर पर) त्रिया चरित्र बड़े विचित्र होते हैं सारथी! मनोरमा ने सदा हमें धोखे में रखा है। वह रात्रि के समय चुप-चाप उठकर यहां के राजकुमार के पास जाकर रंगरेलियां करती रही है और अपने पाप को छुपाने के लिये ही वह सदा अपने आपको पतिव्रता और शीलवती बताती रही?

क्या यह हमारे कुल की प्रतिष्छा के लिये कलंक की बात नहीं है सारथी?

सारथीः- मगर आपको इस बात का पता कैसे चला मालिक?

महीपालः- अभी-अभी उसकी सास को एक दूती बताकर गई है। उसने सब कुछ अपनी आंखों से देखा है।

सारथीः- लेकिन यह कैसे संभव हो सकता है श्रेष्ठिवर! मनोरमा तो कभी अपनी सास की अनुमति बना घर से बाहर कदम भी नहीं रखती। फिर भला वह इस तरह का दुस्साहस कैसे करेगी।

मालिक! आपने एक दूती के कहने पर सहसा कैसे विश्वास कर लिया? दुतियों का तो काम ही घर फुडाने का होता है मालिक।

महीपालः- लेकिन जिस प्रकार उसने बात कही है, उस पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। यदि हम अब मनोरमा को एक दिन भी अपने घर में रखते हैं तो बदनामी के साथ साथ और कोई भारी तोहमत भी आ सकती है हमारे ऊपर। दूती ने निःस्वार्थ एवं अपनापन जताते हुये सब कहा है।

सारथीः- (कुछ सोचकर) मुझे तो किसी प्रकार का षडयन्त्र ही दिखाई दे रहा है। मालिक।

महीपालः-अब कुछ भी हो सारथी! तुम्हें अब विलम्ब नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार शरीर का कोई अंग सड़ जाने पर सारा शरीर सड़ जाने के भय से उसे काट कर फेंक दिया जाता है उसी तरह कुल के कलंकित होने के भय से मनोरमा को यहां से दूर करना ही होगा।

सारथीः- (आग्रह पूर्वक) लेकिन श्रेष्ठिवर! वह सुकोमलांगी मनोरमा किस प्रकार निर्जन एवं भयानक वन में जीवित रह सकेगी जरा यह भी तो सोचिये।

महीपालः- तुम व्यर्थ का आग्रह करते हो सारथी! अब हमें इस विषय में कुछ भी नहीं सोचना है।

सारथीः- पर मैं उसे क्या कह कर रथ में बैठने को कहूँगा? और फिर वह मेरे कहने से वियावान में जाने को कैसे तैयार हो जायेगी।

महीपालः- (कुछ विचार कर) हां.....। तुम्हें यहां कुछ असत्य का सहारा लेना पड़ेगा। उसे कहना होगा कि तुम्हें पीहर से बुलावा आया है, और तुम्हारे ससुर जी ने मुझे पहुँचाने का आदेश दिया है।

(सारथी शिर झुकाये मौन खड़ा रह जाता है।)

महीपालः- (गर्जती आवाज में) क्यों? खडे कैसे रह गये? जाओ शीघ्र आदेश का पालन करो।

सारथीः- (दुःख के साथ, स्वतः) ओफ! आज मुझे जीवन में पहली बार ऐसा दुष्कार्य करने का आदेश मिला है जिसे करने में पांव असमर्थता प्रगट कर रहे हैं।..... लेकिन क्या करूं? मालिक के आदेश का पालन तो करना ही पड़ेगा। (महीपाल से, नम्र स्वर में) अच्छा.....। जा रहा हूं मालिक।

महीपालः- (सख्त स्वर में) हाँ, ध्यान रखना। वह लाख रोये, रोये, और आग्रह करे, उसे भूल कर भी वापस मत लाना।

सारथीः- (करबद्ध) जैसी आज्ञा मालिक।

(सारथी का एक ओर प्रस्थान। महीपाल भी उठ कर अन्दर की ओर चले जाते हैं।)

दृश्य सातवां

(स्थानः- भीषण अरण्य की ओर जाने वाला मार्ग, सारथी एक रथ में मनोरमा को बिठाकर लिये जा रहा है। मनोरमा शान्त मुद्रा में बैठी है। मनोरमा शान्त मुद्रा में बैठी है। सारथी रथ हांकने में तल्लीन है। सहसा नैपथ्य से किसी के गाने का स्वर सुनाई देता है।)

गाना

बन्दे जीवन है इक गीत।
दुखिया बन्दें क्यों रोता है,
दुःख में व्याकुल क्यों होता है,
चढ़ना और उतरना फिर-फिर।
यह गीत की रीत।।बन्दे.....।

सुख आरोह स्वरों का जानों,
दुख में अवरोही पहचानो,
दोनों मिलकर राग बना है।
यह मत भूले मीत।।बन्दे.....।

इस रसिया का कठिन रिझाना,
कही न चूके तेरा गाना,
चढ़ उतरी दोनों में रस हो?
तब है तेरी जीत।।बन्दे.....।।

मनोरमाः- (स्वर लहरी बन्द होने पर) आज, विवाह के बाद प्रथम बार पीहर जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। माता पिता के दर्शनों के लिये मन बड़ा व्याकुल हो रहा है। जाने, वे कैसे होंगे? अरसा जो हो गया उनसे अलग हुये। (कुछ देर विचार मग्न रह कर) हाँ। लेकिन आज बिना कारण सहसा पीहर भिजावाने का विचार सास- श्वसुरजी का कैसे हुआ? जब कि पति देव की मौजूदगी में कभी पीहर जाने का नाम तक नहीं लिया। फिर भला आज स्वेच्छा से उन्होंने कैसे भिजवादी? (कुछ रुककर) वैसे तो माता पिता के पास जाना किसे बुरा लगता है? किन्तु मैं कोटि ध्वज की बहू हूं। खानदान की प्रतिष्ठा के ख्याल से बिना बुलाये पीहर जाना कैसे उचित हो सकता है।...न कोई साथ में नौकर-चाकर, दास-दासी ही हैं। अकेले सारथी के साथ भेजना उन्हें कैसे जच गया?

(कुछ सोच कर सारथी से) क्यों सारथी! तुम्हें तो श्वसुर जी ने बताया होगा कि वे बिना बुलाये मुझे पीहर क्यों भेज रहे हैं।

(सारथी निरुत्तर बैठा रहता है।)

मनोरमाः- (सारथी को मौन देख) तुम बोलते क्यों नहीं सारथी? मौन कैसे बैठे हो? आखिर बात क्या है? मुझे स्पष्ट कहो।

सारथीः- (रथ धीमा करते हुये स्वतः) हे भगवान! अब मैं इस भोली भाली स्वामिनी को क्या उतर दूँ? एक शीलवती एवं पतिव्रता स्त्री पर ऐसा मिथ्या दोषारोपण? जब मैं इसे सत्य बात बता दूँगा, तो इसकी क्या दशा होगी? (रथ को पुनः तेज चलाते हुये) नहीं नहीं। मैं इसे यह नहीं कहूँगा कि तुम पर मिथ्या दोष लगाया गया है।

मनोरमाः- (सारथी को विचार मग्न देख) तुम मन ही मन में क्या सोच रह हो सारथी? मैं जो पूछ रही हूँ उसका उत्तर क्यों नहीं देते?

सारथीः- (झुझलाते हुये, स्वतः) ओह.....। अब मैं इस निर्दोष अवला को क्या उत्तर दूँ? क्या कह दूँ की तुम पर कलंक लगाकर घर से निकाला गया है। (विवशता पूर्वक) ओफ! यह दासता कितनी बुरी है? न तो स्वामी के आदेश की ही अवहेलना की जा सकती है और न स्पष्ट कहने का ही साहस होता है।.....आखिर करूँ तो क्या करूँ?

मनोरमाः- (क्रुद्ध होकर) सारथी! या तो स्पष्ट बताओ, वरना रथ को यहीं रोक दो।

सारथीः- (रथ रोककर, दुखद स्वर में) क्या बताऊँ स्वामिनी! तुम्हारे साथ धोखा किया गया है। तुम्हें पीहर ले जाने के बहाने किसी भयानक वन में छोड़ने के लिये भेजा गया है।

मनोरमाः- (चौंककर) हैं.....? तुम यह क्या कर रहे हो सारथी। धोखा उन्होंने किया है, कि तुम करने जा रहे हो? मैंने ऐसा कौन सा पाप कर्म किया है जिसके बदले सास-श्वसुर ने मुझे भयानक जंगल में भेजा है। आखिर कोई कारण भी तो बताया होगा श्वसुर जी ने?

सारथीः- (रथ से नीचे उतर कर) हाँ, अवश्य बताया है। एक कुलटा स्त्री ने तुम पर दोष लगाते हुये तुम्हारी सास ने कहा कि मनोरामा का यहाँ के राजकुमार से अनुचित सन्बन्ध है। मनोरमा दुराचारिणी है। अपने आपको शीलवती बताकर अब तक दुनियाँ की आँखों में धूल झौंक रही है। मगर आखिर पाप प्रकट होकर ही रहा। पति के परदेश जाते ही यहाँ के राजकुमार पर डोरे डाल दिये। बस इसी तरह की कुछ उलटी-सीधी बातें कह कर आपकी सास को भड़का दिया और जब यह बात सेठजी के कानों में गई तो उन्होंने बदनामी के भय से तुम्हें घर से निकाल देना ही उचित समझा।

मनोरमाः- ओ! (सहसा मूर्छित होकर रथ में ही एक ओर लुढ़क जाती है। तथा कुछ

देर में होश आने पर) हा देव! यह कैसी विडम्बना है? पवित्र शील को धारण करने पर भी मेरे शील को दोष लगाया गया। मुझे व्यभिचारिणी ठहरा कर घर से निर्वासित किया गया। .....ओह। कर्मों की बड़ी विचित्र लीला है। पल भर में ये न जाने क्या से क्या कर देते हैं। (निर्जन वन की विकरालता का ध्यान आने पर) मगर.....। उस भयानक वन में मैं अकेली कैसे जीवन यापन कर सकूंगी? भयानक हिंसक पशुओं के भय से ही मैं प्राण त्याग दूँगी। (सारथी से) तुम ही बताओ सारथी। क्या मुझ अबला के लिये यही दंड़ उचित था? क्या मेरे पक्ष में यह सही, न्याय था?

सारथीः- (दुखद स्वर में) मैं सब कुछ जानता हूँ स्वामिनी कि वास्तव में आपके साथ घोर अन्याय हुआ है। और यह भी जानता हूँ कि आप कितनी पवित्र और निष्कलंक हो। पर उन्हें आपके जान की परवाह न होकर अपनी प्रतिष्ठा की परवाह थी। जैसे ही आपके निर्वासन का आदेश सुना, मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। ऐसे लगने लगा जैसे धरती पर भूचाल आ गया हो। फिर भी मैंने मालिक के आदेश के विरुद्ध अपना मुंह खोला। तब पुनः सेठजी का गर्जता स्वर सुनाई दिया 'खड़े कैसे हो?' जाओ शीघ्र आदेश का पालन करो।' (रुक कर रुंधे स्वर में) स्वामिनी! मैंने भी पूर्व जन्म में कोई जघन्य पाप किया होगा, तभी इस अन्याय पूर्ण आदेश का पालन करने को इस घर का सेवक बनना पड़ा।

मनोरमाः- (धैर्य पूर्वक) इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है सारथी। यह सब मेरे ही भाग्य का दोष है। तुम्हें तो अपने मालिक का हुक्म बजाना ही था, उनके आदेश की अवज्ञा कैसे कर सकते थे? (कुछ देर सोचकर) सारथी! यदि मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में कुछ दया है, तो एक बात मेरी स्वीकार करो।

सारथीः- (कर बद्ध) आप ऐसे शब्द कहकर मुझे शर्मिन्दा न करो स्वामिनी! आपके आदेश का अवश्य पालन करूँगा। कहिये, मेरे लिये क्या आज्ञा है?

मनोरमाः- (दीनता पूर्वक) सारथी! तुम मुझे एक बार अपने पिता के घर पहुँचा दो। मैं तुम्हारा बड़ा अहसान मानूँगी।

सारथीः- (गदगद होकर) आप यह क्या कह रही हैं स्वामिनी। कहीं सेवक भी अपने मालिकों पर अहसान किया करते हैं? मेरे लिए आप अब भी वही हैं जो पहले थी। बल्कि मनुष्यता के नाते और भी कर्तव्य का भार बढ़ गया है मुझ पर। चाहे दासता ने मुझे विवेक शून्य भले ही बना दिया है किन्तु हृदय से मनुष्यता अभी समाप्त नहीं हुई है। (दृढ़ता से) मैं आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूँगा। चाहे आपकी सहायता में मुझे कहीं असत्य का भाषण भी करना पड़ा तो मैं उसे अपना धर्म समझूँगा। (रथ में बैठते हुये) अच्छा चलिये। उज्जैनी नगरी तो अब निकट ही हैं आप शीघ्र ही माता-पिता

के दर्शन करेंगी। (सारथी रथ को तेजी से चलाकर एक ओर ले जाता है।)

दृश्य आठवां

(**स्थानः**- उज्जैनी का बाहिरी भाग! सामने कुछ दूरी पर नगरी का विशाल परकोटा एवं मुख्य द्वार दिखाई दे रहा है।

एक ओर से सारथी रथ लेकर आता है। मनोरमा शान्त मुद्रा में बैठी है।)

सारथीः- (संकेत द्वारा मनोरमा से) स्वामिनी! उज्जैन नगरी आ गई है। वह सामने मुख्य द्वार दिखाई दे रहा है।

मनोरमाः- (उसी ओर देखकर) ठीक है सारथी! मगर तुम्हें रथ को यहीं रोकना होगा।

सारथीः- (रथ को रोकते हुये) ऐसा क्यों स्वामिनी?

मनोरमाः- (समझाती हुई) सारथी! मैं यहां पिताजी के बिना बुलाये आई हूँ। सिवाय तुम्हारे अन्य कोई दास-दासी भी साथ में नहीं है। अतः इस प्रकार मुझे अकेली आई देख कहीं वे क्रुद्ध न हो उठें। आखिर कुल की मर्यादा का भी तो सवाल है सारथी।

सारथीः- आप सत्य कह रही हैं.....तो फिर केसा किया जाये?

मनोरमाः- मैं यहीं रथ में बैठी हूँ। तुम जाकर पिताजी को मेरे आने का सन्देश दे दो। फिर तुम्हारे लौटकर आने पर मैं स्वयं चलूँगी।

सारथीः- (रथ से उतर कर) जैसी आज्ञा स्वामिनी! मैं अभी आपके पिताजी से मिलकर आता हूँ। तब तक आप यहीं रथ में बैठी रहें।

(सारथी का एक ओर प्रस्थान)

मनोरमाः- (स्वतः) आज बरसों बाद पीहर आने का अवसर मिला है। माता-पिता के दर्शनों को ये नयन आतुर हो रहे हैं।.....और उन बचपन की सखियों का तो कहना ही क्या.....? जैसे ही मेरे आने की खबर सुनेंगी सब की सब दौड़ी चली आयेंगी और शिकायतों की झड़ी लगा देंगी। कहेंगी 'मनोरमा'! तू तो ससुराल जाकर हमें एक दम ही भूल गई। परदेशन जो बन गई हो ना? (सहसा चौंककर) ओह? सारथी अभी तक लौटकर नहीं आया? बड़ी देर लगाई उसने।

(सहसा एक ओर से सारथी का संजल नेत्रों से प्रवेश)

मनोरमाः- (सारथी की आंखों में अश्रु देख) ओऽ.....! तुम रुदन कर रहे हो सारथी! शायद पिताजी ने तुम्हें कुछ कटु शब्द कह दिया है। (ढ़ांढ़स बंधाती हुई) मगर तुम पिताजी के कहने का कुछ ख्याल न करो सारथी! जरा धीरज रखो! (उठने का प्रयास करती हुई) लो, मैं चलती हूँ। मैं उनसे क्षमा मांग लूंगी। मैं तो उनकी पुत्री हूँ। वे मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे।

सारथीः- (अश्रु पोंछते हुये, रुंधे स्वर में) अब उनसे ऐसी आशा रखना व्यर्थ है स्वामिनी! इस घर के दरवाजे आपके लिये सदा के लिये बन्द हो गये हैं। उनके खुलने की अब कोई आशा नहीं।

मनोरमाः- (सरलता से) तुम यह क्या कर रहे हो सारथी? क्या पुत्री के लिये कभी पिता के द्वार बन्द हो सकते हैं? औलाद कैसी भी हो, माता-पिता के लिये कभी अप्रिय नहीं हो सकती। वे मेरी इस बेवसी पर अवश्य तरस खायेंगे।

सारथीः- (बिलकुल नहीं स्वामिनी! बिलकुल नहीं! अब आप उनकी नजरों में महान गुनहगार हो। कलंकिनी हो। बिना बुलाये आपका यहाँ अकेली आना ही उनके लिये इस बात का सबसे बड़ा सबूत है। मेरे कहने से पूर्व ही वे कह उठे 'मनोरमा का बिना बुलाये इस प्रकार अकेली आना, यह प्रगट करता है कि उस पर किसी तरह का कलंक लगा है। अतः मैं ऐसी कलंकिनी बेटी का मुँह भी नहीं देखना चाहता। अब इस घर में उसके लिये कोई जगह नहीं है। वह जहाँ जाना चाहे चुपचाप चली जाये। हाँ, और यह भी कहा, कि इससे पूर्व कि नगरवासियों की दृष्टि आप पर पड़े, आप यहाँ से तुरन्त चली जायें।'

मनोरमाः- (दुःखी होकर) ओह! भगवान्! (सहसा मनोरमा मूर्च्छा खाकर रथ में एक ओर लुढ़क पड़ती है। सारथी दौड़कर कहीं से पानी लाकर उसके मुँह पर छिड़कता है। कुछ देर बाद होश में आने पर) ओफ! दुर्भाग्य ने मुझे कहीं की भी नहीं रखी है। मेरे जन्मदाता भी आज मुझसे बदल गये। (कुछ सोच कर) सच है दुर्दिनों में तन के वस्त्र भी दुश्मन बन जाते हैं। अपने भी पराये हो जाते हैं।

बुरे दिन आन कर, इन्सान को जब घेर लेते हैं।
और की बात क्या, मां-बाप ही मुंह फेर लेते हैं।

(कुछ सोचकर) मगर, इसमें किसी का दोष भी क्या है?

यह सब मेरे ही अशुभ कर्मों का तो फल है। क्यों तो पतिदेव मुझे छोड़कर परदेश जाते और क्यों मुझे ये दिन देखने पड़ते। किन्तु यह सब तो होना ही था। और होनी को टाल भी कौन सकता है?

होनहार बलवान है, टाल सके ना कोय।
होने के वश में सभी, होनी हो सो होय।।

सारथीः- वैसे तो अधिकांश स्त्रियाँ ससुराल से तिरस्कृत एवं बहिष्कृत होकर माता-पिता के घर आश्रय पाती हैं। किन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि आज मुझे पिता के द्वार से भी तिरष्कृत होकर जाना पड़ रहा है। (अश्रु पोंछकर) ठीक है सारथी! रथ को शीघ्र निर्जन वन की ओर ले चलो। कहीं यह न हो कि कोई हमें देखले।

सारथीः- (सारथी रथ को मोड़ते हुये) अच्छा, चलिये स्वामिनी।

(सारथी रथ को एक ओर ले जा रहा है। नैपथ्य से किसी क गाने का स्वर

सुनाई देता है।)

दृश्य नौवां

(**स्थानः**- भीषण अरण्य! चारों ओर भयानकता व्याप्त है। इधर, उधर हिंसक पशु विचरण कर रहे हैं। सहसा एक ओर से एक रथ आता दिखाई देता है जिसमें मनोरमा बैठी है)

सारथीः- (रथ को एक घने वृक्ष के नीचे रोकते हुये) स्वामिनी! यही है वह भयानक जन शून्य वन, जिसमें आपको छोडने का आदेश आपके श्वसुर जी ने दिया था।

मनोरमाः- (सहज स्वर में) ठीक है सारथी! तुम मुझे अब यहां उतार कर श्वसुर जी के आदेश का पालन करो।

सारथीः- पर यह कैसे सकता है स्वामिनी? इस निर्जन और भयानक वन में आपको अकेली छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ?

मनोरमाः- तुम्हें अपने कर्तव्य का पालन करना ही होगा सारथी! भावुकता वश मैं तुम्हें उज्जैन ले गई। उसमें भी समय अधिक लग गया। अतः विलम्ब करना उचित नहीं।

सारथीः- आपको निर्दोष जानकर भी वन के हिंसक जीव-जन्तुओं के मुंह का ग्रास बनने के लिये अकेली छोड़ जाऊँ? नहीं नहीं! यह जघन्य कार्य मुझसे नहीं होगा, स्वामिनी, नहीं होगा।

मनोरमाः- (समझाती हुई) देखो सारथी! मैं तो उन लोगों की दृष्टि में दोषी हो ही चुकी। तभी तो उन्होंने बिना सही निर्णय के मुझे व्यभिचारिणी समझ कर घर से निकाल दिया। किन्तु अब तुम्हारे शीघ्र लौटकर नहीं जाने पर तुम्हारे प्रति भी न जाने क्या-क्या गलत धारणायें बना बैठें। अतः मैं नहीं चाहती कि मेरे लिये तुम्हें किसी तरह का उलाहना मिले।

सारथीः- (सजल नेत्रों से) स्वामिनी.....।

मनोरमाः- (पुनः समझाती हुई) सारथी! दुख-सुख की खेती है यह दुनिया! प्राणी जैसा बोता है वैसा काटता है। मैंने पिछले जन्म में कोई बुरे कर्म किये होगे, उसी का फल मुझे मिल रहा है। अतः मुझे अपने कर्मों का फल भोगने के लिये अकेली छोड़ कर तुम शीघ्र चले जाओ।

सारथीः- (विवशता पूर्वक) अच्छा स्वामिनी! मैं जा रहा हूट। मेरा अपराध क्षमा करें।

(सारथी अश्रु बहाता रथ को लेकर एक ओर चल देता है।)

मनोरमाः- (सारथी के जाने के बाद) गया! सारथी भी अपना कर्तव्य निभाकर चला गया। अब मैं हूँ और हिंसक पशुओं से भरा यह भयानक जंगल, (दुखद स्वर) प्रभो! यह मुझे कौन से अपराध का दण्ड मिल रहा है। (पति को याद करके) प्राणनाथ! आप कहाँ है? आपकी यह चरण दासी आज घोर संकट में पड़ गयी। (धीरे, धीरे आगे बढ़ती

हुई, गाने के स्वर में)।

गाना

कहाँ जा बसे हो, मेरे प्राण प्यारे।
मुझे आज छोड़ा है किसके सहारे।।
नहीं आज मेरा है कोई सहाई,
सभी ने मेरे साथ की बेवफाई,
हरे कौन संकट सिवा अब तुम्हारे।
मुझे आज छोड़ा है किसके सहारे।।
सदा सुख में बीता था जीवन हमारा,
मिला मुझको सुखमय था साया तुम्हारा,
उदय दुष्करम अब हुये हैं हमारे।
मुझे आज छोड़ा है किसके सहारे।।
मेरे देव सुधि आज लेने को आओ,
छुपे जा कहाँ अब दरश तो दिखाओ,
यह दासी तुम्हारी तुम्हें है पुकारे।
मुझे आज छोड़ा है किसके सहारे।।

(गाना समाप्त कर धीरे-धीरे आगे बढ़ती है, पांव में कंटक चुभ जाता है। उसे निकाल कर जैसे ही आगे बढ़ती है सहसा सिंह का गर्जन सुन दहल उठती है।)

मनोरमाः- (स्वतः भयभीत स्वर में) ओह! सिंह दहाड़ रहा है। कैसी भयानकता व्याप्त है चारों ओर! कदम-कदम पर मृत्यु का साम्राज्य है।

कहीं हैं अजगर, कहीं हैं चीते,
चिंघाड़ हथिनी मचा रही है।
बिकट वनी में यह मृत्यु डाकिन,
कदम-कदम पर डरा रही है।।

(पुनः धीरे-धीरे आगे बढती है, कि सहसा एक भयंकर काला सर्प अपना फन फैलाये दिखाई देता है, जिससे भयभीत हो मनोरमा चीख मार कर गिर पड़ती है। कुछ ही देर में सर्प अदृश्य हो जाता है। मनोरमा की चीख सुन, शिकार पर आया बल्लभ पुरीका राजकुमार अपने दो साथियों सहित वहां प्रवेश करता है।)

राजकुमारः- (इधर-उधर देखकर अपने साथियों से) न जाने वह चीख किसकी थी, और कहाँ से आई थी। इधर तो कोई दिखाई भी नहीं देता।

साथीः- (मनोरमा की ओर देख) अरे.....वह उधर क्या है? मुझे तो कोई स्त्री दिखाई देती हैं।

राजकुमारः- (उसी ओर देख कर) हाँ, हाँ! तुम्हारा अंदाजा सही है! आओ, जरा नजदीक चल कर देखें।

(तीनों मनोरमा के करीब जाते हैं।)

साथी-2:- (मनोरमा की सुन्दरता को देखकर) राजकुमार! यह तो कोई परी दिखाई देती है।

राजकुमारः- (गौर से देखकर) वास्तव में इतनी सुन्दर स्त्री तो हमने आज तक नहीं देखी। शायद कहीं की राजकुमारी दिखाई देती हैं।

साथी-1:- लेकिन यह इस निर्जन वन में अकेली कैसे आई? (इधर-उधर देखकर) यहाँ अन्य कोई दिखाई भी तो नहीं देता।

साथी-1:- कुछ भी हो यार! लेकिन औरत है गजब की सुन्दर! हीरा है हीरा।

राजकुमारः- हम इस हीरे से अपने राज महल की शोभा बढ़ायेंगे। इसे इसी हालत में यहाँ से ले चलो। होश आने पर तो यह शोर गुल मचायेगी।

दोंनो साथीः- अभी लीजिये कुमार!

(दोनों साथी मनोरमा को उठाकर राजकुमार के पीछे पीछे चले जाते हैं।)

दृश्य दसवां

(**स्थानः-** वल्लभपुरी का राजभवन। राजकुमार के एकान्त कक्ष में, फर्श पर बिछे कालीन पर मनोरमा गमगीन हालत में बैठी है।)

मनोरमाः- (स्वतः दुखद स्वर में) प्रभो! ऐसे कौनसे पाप किये हैं, मैंने? जिनका फल मुझे मिल रहा है। प्राणनाथ के परदेश जाते ही, मेरे शील पर दोष लगा। सास-ससुर द्वारा घर से बाहर कर दी गई। माता-पिता ने भी आश्रय नहीं दिया। तब विवश हो सारथी भयानक वन में छोड़ गया, जहाँ चारों ओर हिंसक जीव जन्तुओं का साम्राज्य था। जिनके भय से मुझे मूर्च्छा आ गई। तब उसी मूर्च्छावस्था में यहाँ का राजकुमार मुझे यहाँ उठा लाया। और अब वह मेरा शील हरण करने को उतारू हो रहा है। (हाथ जोड़कर) प्रभो! आज मेरी लाज आप ही के हाथ है! ये प्राण भले ही चले जायें, मगर मेरे शील पर जरा भी आँच नहीं आने पाये।

प्रार्थना

यह तन जाये तो जाये,
मेरा शील धरम नहीं जाये।
सीता जी की अग्नि परीक्षा,
करी आन देवों ने रक्षा,
अग्नि में कमल रचाये,
मेरा शील धरम नहीं जाये।।

मैं तो हूँ इक अबला नारी,
मुझ पर संकट पड़ रहा भारी,
तुम बिन कौन बचाये,
मेरा शील धरम नहीं जाये।।
दुष्ट नराधम कब मानेगा,
शील हरण की मन ठानेगा,
कौन उसे समझाये,
मेरा शील धरम नहीं जाये।।
गाय सिंहने है अब घेरी,
टेर सुनो प्रभु करो ना देरी,
लाज मेरी रह जाये,
मेरा शील धरम नहीं जाये।।

राजकुमारः- (दूर ही प्रसन्न मुद्रा में) वाह, वाह! क्या मधुर स्वर, लहरी गूँज रही थी, अभी-अभी! (मनोरमा से) सुन्दरी तुम्हारी प्रत्येक बात में सुन्दरता झलक रही है। तुम्हारे समान सर्व गुण सम्पन्न सुन्दरी से हमारा राजभवन जगमगा उठेगा (नजदीक जाकर) हाँ, तो फिर क्या निश्चय रहा तुम्हारा अब?

मनोरमाः- (दृढ़ता के साथ) मेरा निश्चय कोई नया नहीं। जो कल था, वही आज भी है।

रहुँगी शील पर कायम, पती-व्रत धर्म पालूँगी।
मैं हँसते-हँसते अपने धर्म हित, शिर को कटा लूँगी।।

राजकुमारः- (व्यंग पूर्वक) ओ, हो.....इतनी दृढ़ प्रतिज्ञा? (नम्रता पूर्वक) सुन्दरी! इस उम्र में ऐसा सोचना केवल भोलापन है। रूप और यौवन जीवन में एक ही बार मिलता है। ये दोनों ही अनमोल चीजें तुम्हारे पास हैं। अतः इनका सही रूप में उपयोग तुम्हें करना ही चाहिये।

मनोरमाः- धर्म के आगे इनका कोई मूल्य नहीं है।

राजकुमारः- (क्रोध पूर्वक) नादान लड़की! कल से धर्म-धर्म चिल्ला रही है। सब तरह से मेरे अधिकार में है, फिर भी बराबर मुँह खोले जा रही है। अब भी मेरा कहना मान कर अपने निश्चय को बदल डाल। वरना पछताना पड़ेगा।

मनोरमाः- (दृढ़ स्वर में) **वही पछतायेगा जो पाप मय जीवन बितायेगा।**
सु-पथ तजकर कुपथ में, जो कदम अपना बढ़ायेगा।।

राजकुमारः- (मनोरमा का हाथ पकड़कर)

मेरा मन तुझपे आया है, वो मन अब रंग दिखायेगा।
मैं देखूँगा कि अब तुझको, बचाने कौन आयेगा।।

मनोरमाः- (हाथ छुड़ाने का प्रयास करती हुई)

मैं अपने धर्म पर दृढ़ हूँ, धरम ही रंग लायेगा।
बचाने मेरी असमत को, मेरा 'भगवान' आयेगा।।

(सहसा एक ओ से तेज प्रकाश के साथ युधिष्ठिर नाम का देव प्रगट होता है। दिव्य तेज मुख चमक रहा है। वस्त्रालंकार जगमगा रहे हैं।)

देवः- (राजकुमार का हाथ पकड़ कर एक ओर घसीटते हुये) रे, दुष्ट-पापी! क्या तू अबलाओं के साथ बल अजमाने को राजकुमार बना है? नीच! दुराचारी! सती के पवित्र शरीर को हाथ लगाते तुझे शर्म नहीं आई? इसे असहाय जान इसके शरीर पर आक्रमण करना चाहता है?

राजकुमारः- (क्रोध पूर्वक हाथ छुड़ाने का प्रयास करते हुये)अरे मूर्ख! तू कौन है? जो बिना अनुमति के राजभवन में चला आया?

देवः- (निडरता पूर्वक) में इस सुन्दरी का सेवक हूँ। मेरा नाम युधिष्ठिर है। इसकी रक्षा के निमित्त से में यहाँ आया हूँ। अब तू अपनी भलाई चाहता है, तो इस सती ने अपने दुर्व्यवहार की क्षमा माँग।

राजकुमारः- (लापरवाही से) जा, जा! आया है, क्षमा मंगवाने वाला। सीधी तरह से जैसे आया है, वैसे वापस चला जा! वरना अभी दुर्गति करवा कर निकलवा दिया जायेगा।

देवः- (हँसते हुये) दुर्गति तेरी होगी या मेरी, यह तो अभी पता चल जायेगा। पहले तू इस सुन्दरी से माफी मांग।

राजकुमारः- (देव को धक्का देते हुये) अब जाता है या नहीं तू। (धक्का लगने पर देव क्रोधित हो उठता है, तथा कुछ ही क्षणों में राजकुमार को धराशयी कर एक पांव उसकी छाती पर रखकर खड़ा हो जाता है। पांव के भारी दबाव से राजकुमार चिल्लाने लगता है।)

देवः- (पाँव पर जो लगाकर) अब बोल, पापी! तेरा क्या करूं? तू कहे तो सीधा यमलोक पहुँचा दूँ।

राजकुमारः- (करबद्ध) मुझे क्षमा कर दो भाई! मैं भविष्य में भूलकर भी ऐसा अपराध नहीं करूँगा।

देवः- तुम्हें क्षमा मैं नहीं कर सकता। तुम्हारे अपराधों को तो वह सुन्दरी ही क्षमा कर सकती है।

राजकुमारः- (गिडगिड़ाकर) तो मुझे जरा उठने दीजिये। चलिये मैं उस सुन्दरी से क्षमा माँग लेता हूँ।

(देव राजकुमार की छाती से पैर उठा लेता है तथा राजकुमार का हाथ पकड़े मनोरमा के समक्ष जाता है।)

राजकुमारः- (मनोरमा के पांव छूकर) बहिन! मैं महान अपराधी हूँ। मैंने व्यर्थ ही आपके दिल को कष्ट पहुँचाया। भविष्य में मैं भूलकर भी ऐसा काम नहीं करूँगा।

देवः- (मनोरमा से) हे पतिव्रते! वास्तव में तुमने पतिव्रत धर्म का पालन किया है। तुम्हारे समान प्रतिव्रता स्त्री इस संसार में कोई नहीं है। तुम्हारे शील की रक्षा के लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। इस राजकुमार ने महान अपराध किया है। अतः आपकी आज्ञानुसार ही इसके साथ बर्ताव किया जायेगा।

मनोरमाः- (देव से) हे वीर पुरुष! राजकुमार ने मुझे बहिन, कह संबोधित कर लिया है, तो इन्हें क्षमा कर दिया जाये। मेरे लिये ये भाई समान हैं।

देवः- (राजकुमार से) जाओ! मैं इस सुन्दरी के कहने पर तुम्हें क्षमा करता हूँ।

मनोरमाः- (देव से) हे वीर पुरुष! मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती। मैं उसी वन में जाना चाहूँगी, जहाँ से राजकुमार मुझे यहाँ लाये थे।

देवः- (मनोरमा से) जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा ही किया जायेगा। (राजकुमार से) सुन्दरी की इच्छा का शीघ्र पालन किया जाये।

राजकुमारः- (नम्रता से) जैसी आज्ञा।

मनोरमाः- (देव से) हे वीर पुरुष! आपने मेरे साथ महान उपकार किया। वरना आज तो सचमुच मेरी अग्पि परीक्षा थी। कृपा कर अपना स्पष्ट परिचय तो दीजिये।

देवः- (प्रसन्न मुद्रा में) सुन्दरी! मैं प्रथम स्वर्गवासी देव हूँ। और महाराजा इन्द्र का किंकर हूँ। तुम्हारे शील की प्रशंसा इन्द्रलोक तक हो रही है। तुम्हारी रक्षा के लिये ही अमरेश ने मुझे यहाँ भेजा था, और हर्ष की बात है कि मैं समय पर यहाँ पहुँच गया। अव मैं प्रस्थान कर रहा हूँ।

(सहसा देव का अदृश्य हो जाना।)

राजकुमारः- (मनोरमा से) चलो बहिन! रथ तैयार है। तुम्हें उसी स्थान पर पहुँचा आता हूँ।

मनोरमाः- (चलती हुई) अच्छा, चलो भाई।

(दोनों का एक ओर प्रस्थान)

दृश्य ग्यारहवां

(**स्थानः-** वही भीषण अरण्य। मनोरमा अकेली इधर-उधर भटकती दिखाई दे रही है। चारों ओर गहन अंधकार छाया हुआ है।)

मनोरमाः- (एक बड़े पत्थर पर बैठती हुई) बल्लभपुरी का राज कुमार देवाज्ञा से पुनः मुझे उसी स्थान पर छोड़ गया, जहां से मेरा हरण किया था। (दुखद स्वर में) हाँ..

.....इस अल्प आयु में न जाने कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। और भविष्य में किन-किन संकटों में से गुजरना पड़ेगा, यह तो देव ही जाने, (कुछ रूककर) पति वियोग। मिथ्या कलंक! माता-पिता द्वारा तिरस्कार। और अब साक्षात् मृत्यु की गोद में आकर पड़ी हूँ। जहाँ कोई मेरी आह तक सुनने वाला नहीं। (पति की याद करके) प्राणनाथ! प्राणेश्वर! आप छह मास में लौट कर आने की कह गये थे, पर आज तक नहीं आये।

गाना

कहाँ हो प्राण धन मेरे, तुम्हारी याद आई है।
जरा अब देखलो आकर, हुई कैसी तबाही है।।
लगाकर दोष मेरे शील पर, भेजा मुझे वन में,
न कोई है यहाँ अपना, अकली हूँ मैं निर्जन में,
सभी ने की मेरे संग आज कैसी बेवफाई हैं।।
न आये नाथ वादे पर, गये छह मास की कहकर,
मिलन के वे मधुर सपने हैं, आते याद रह, रह कर,
न ली अब तक खबर क्यों, इस तरह मुझको भुलाई है।।
भयानक वन है, हिंसक प्राणियों का यहाँ बसेरा है,
खड़ी है मौत पग-पग पर, विपद ने आन घेरा है,
बचेंगे प्राण अब कैसे, समझ में कुछ न आई है।।
बरसते नयन हैं मेरे, जरा अब तरस तो खाओ,
मेरे जीवन की नैया के खिवैया, अब चले आओ,
यूं रो-रो कर मेरे प्रियतम, व्यथा अपनी सुनाई है।।

(उठकर, इधर-उधर चलती हुई) ओह! चारों ओर घोर अन्धेरा सा छा गया है। अभी! रात्रि शुरू ही हुई है, लेकिन हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता। (बादलों की गड़ गड़ाहट के साथ पानी की बूंदें बरसना शुरू होती हैं (भयभीत होकर छिपने का स्थान खोजती हुई) भगवान्! मुझ रिपराधनी को क्यो इतना दंड़ दिया जा रहा है।

गाना

आज किसका मैं पाऊँ सहारा। प्रभु मेटो यह संकट हमारा।।
मोहे दुर्भाग्य ने हाय लूटा, आज सम्पर्क सबसे है छूटा,
कर्म रूठे चले कौन चारा।। प्रभु.....
ससुराल न पीहर मेरा, हुआ वन में आज बसेरा।
चहुँ ओर भयानक नजारा। प्रभु.....

नाथ मुझ पर मुसीबत पड़ी है, मौत पग-पग पे देखो खड़ी है।
मुझको है अब भरोसा तुम्हारा।। प्रभु.....

(सहसा एक ओर से धनदत्त सेठ का प्रवेश)

धनदत्तः- (ओह! इस निर्जन वन में किसका आर्त्तनाद सुनाई दे रहा है? वेदना के स्वर में कौन अपना दुःख प्रकट कर रहा है? (थोड़ा आगे बढ़कर मनोरमा की ओर गौर से देखते हैं।) ओह.....इस अन्धकार में कुछ दिखाई भी तो नहीं देता। (सहसा आकाश में बिजली चमकती है, उसके प्रकाश में मनोरमा को देखते हुये) अरे यह तो कोई अबला है। (मनोरमा से) बेटी! तुम कौन हो? और इस निर्जन स्थान में अकेली कैसे आई हो?

मनोरमाः- (सहसा आगन्तुक को देखकर) मेरे विषय में जानकर आप क्या करेंगे महानुभाव! मुझे अपने तक ही रहने दीजिये।

धनदत्तः- (सहानुभूति पूर्वक) बेटी! किसी के संकट में साथ देना, मनुष्य का कर्तव्य होता है। अतः उसी कर्तव्य के नाते तुम्हारी व्यथा जान लेने पर संभव है, मैं तुम्हारे कुछ काम आ सकूँ। तुम मेरी पुत्री समान हो। तुम निःसंकोच अपनी विपद कथा मुझे सुनाओ।

मनोरमाः- (कुछ साहस करके) महानुभाव! जब आप मुझे पुत्री कह कर सम्बोधित कर रहे हैं, तो फिर मैं भी अपने धर्म पिता से कुछ नहीं छिपाऊँगी। महानुभाव! मालव देश में उज्जैनी नाम की एक नगरी है। वहाँ के श्रेष्ठि महीदत्त की मैं पुत्री हूँ।

धनदत्तः- (चौंककर) हैं,.....कौन- मनोरमा?

मनोरमाः- (साश्चर्य) आपने मेरा नाम कैसे जाना, महानुभाव?

धनदत्तः- और क्या तूने मुझे अब तक नहीं पहिचाना?

मनोरमाः- नहीं।

धनदत्तः- (हँसते हुये) अरी पगली! मैं तेरा मामा हूँ। काशी का धनदत्त।

मनोरमाः- (पाँवों में गिरती हुई) ओह! मामा जी हाँ, बेटी!

धनवन्तः- (हाथ के सहारे उठाते हुये) मैं कार्यवश आगे गया था। और वापस काशी की ओर जा रहा था कि यहाँ तेरा रुदन सुन, देखने की उत्सुकता से इधर आ गया।

मनोरमाः- (प्रसन्न स्वर में) मेरे आज अहो भाग्य हैं जो मामा जी के दर्शन हुये।

धनदत्तः- अच्छा! अब तू पूरा वृतात्त सुना। जिसे सुनने को मैं आतुर हूँ।

मनोरमाः- (दुख पूर्वक) क्या सुनाऊँ मामा जी। कर्मों के कुचक्र में फँसी हूँ। प्राणनाथ व्यापार हेतु विदेश में चले गये। उनके पीछे एक कुलटा औरत के कहने पर सास-श्वसुर ने मुझ पर दोष लगाकर पीहर के बहाने, इस भयानक वन में भिजवा दिया।

धनदत्तः- ओह! तुम समान शीलवती पर ऐसा मिथ्या दोष?

मनोरमाः- इतना ही नहीं मामा जी! मेरे आग्रह पर सारथी मुझे उज्जैन भी ले गया। मगर वहाँ माता-पिता ने मुझ से बात तक नहीं पूँछी और नगर के बाहर से ही मुझे वापस लौटा दिया। मैं कहीं की नहीं रही मामा जी। (रुदन करना)

धनदत्तः- (धीरज बंधाते हुये) धैर्य से काम ले बेटी! रुदन मत कर। यह सब तेरे अशुभ कर्मों का उदय था, अब बीती बातों को भुला कर तू शीघ्र मेरे साथ चल। यह भी संयोग ही था जो मैं इधर आ गया। वरना न जाने तेरी क्या गति होती। वन के हिंसक पशु तुझे जीवित नहीं छोड़ते।

मनोरमाः- मैं तो जीवन की आश ही छोड़ चुकी थी मामा जी! आपके दर्शनों से थोड़ी धीरज बंधी है। (सहसा विचार कर) लेकिन मामाजी! मैं आपके साथ कैसे चल सकती हूँ। मुझ पर कलंक जो लगा है।

धनदत्तः- (दृढ़ता पूवर्क) तू इसकी जरा भी चिन्ता न कर बेटी।

मनोरमाः- जब माता-पिता ने ही लोक निन्दा के भय से मुझे स्वीकार नहीं किया तो आप व्यर्थ में मुझ कलंकिनी को अपने साथ ले जाकर क्यों दुनियाँ की नजरों में निन्दा के पात्र बनना चाहते हैं। मैं नहीं चाहती मामा जी, कि मेरे कारण किसी अन्य को किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़े।

धनदत्तः- काश, मैं भी तुझ पर लगाये हुये मिथ्या आरोप पर विश्वास कर लेता तो संभव है, तुझे अपने साथ चलने को भी नहीं कहता। लेकिन लोगों के कहे अनुसार तू व्यभिचारिणी होती तो अब तक इस निर्जन वन में भूखी प्यासी नहीं पड़ी रहती और लोगों ने बिना सोचे विचारे तुझ पर मिथ्या दोष लगाकर मृत्यु के मुंह में ढ़केल दिया है उन लोगों में से तू मुझे मत समझ। समय आने पर मैं सबको समझा लँगा और सुखानन्द कुमार के विदेश से लौट आने पर मैं तुझे अपने घर पहुँचा दूँगा।

मनोरमाः- (उठती हुई) अच्छा मामा जी! यदि आप इतना आग्रह कर रहे हैं, तो मैं भी इन्कार कैसे कर सकती हूँ। चलिये, मैं चलने को तैयार हूँ।

(दोनों का एक ओर प्रस्थान)

अंक दूसरा
दृश्य पहला

(**स्थानः**- हंसद्वीप का राज भवन! महारानी मदन मंजरी का श्रृंगार कक्ष! जिसकी एक खिड़की राज दरबार की ओर खुली हुई है। मदन मंजरी अपने श्रृंगार में रत है। तथा कभी-कभी खिड़की में से दरबार की ओर देखती जाती है। सहसा एक दासी तेजी से प्रवेश करती है।)

दासीः- (दूर ही से) महारानी जी।

मदन मंजरीः- (मुड़कर दासी की ओर देखती हुई) क्या है री? क्यों चिल्लाती आ रही है?

दासीः- (धीमे स्वर में) महारानी जी! आज दरबार में एक परदेशी नौ जवान आया है। वह जवाहरात का बड़ा सौदागर है। महाराज को उसने बहुत कीमती रत्न भेंट किये हैं।

मदन मंजरीः- (खिड़की से देखती हुई) अच्छा.....? देख वही तो नहीं जो महाराज के पास बैठा वार्तालाप कर रहा है?

दासीः- (खिड़की में देखकर) हाँ वही है। देखिये तो कितना सुन्दर और बल शाली दिखाई दे रहा है वह?

मदन मंजरीः- (एक टक खिड़की में देखती हुई) वास्तव में बहुत ही सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देता है। ऐसा पुरुष तो मैंने आज तक नहीं देखा। कैसा गठीला वदन है इसका?

दासीः- हाँ, महारानी जी! कोई राजकुमार भी क्या होगा इसके सामने?

मदन मंजरीः- (दासी का हाथ पकड़ कर) देख दासी, एक काम कर।

दासीः- (कर वद्ध) आज्ञा कीजिये महारानी जी।

मदन मंजरीः- (दासी) तू शीघ्र दरबार में जा और महाराज से आज्ञा लेकर उस सौदगर को जवाहरात दिखाने के बहाने यहाँ बुलावा।

दासीः- (सविनय) अभी लीजिये महारानी जी! मैं तुरन्त लेकर आती हूँ।

(दासी का प्रस्थान)

मदन मंजरीः- (स्वतः) क्या ही अच्छा हो, वह नौ जवान मेरा आग्रह मानकर, सदा के लिये यहीं रहना स्वीकार कर ले।

(कुछ रुककर) क्यों नहीं मानेगा वह मेरी बात। यहाँ किस बात की कमी रहेगी उसे? (शीशे में अपना मुँह देखती हुई) और फिर मैं क्या कम सुन्दर हूँ। ज्यों हि मुझे देखेगा, देखता रह जायेगा।

(सहसा दासी के साथ सुखानन्द का प्रवेश)

सुखानन्दः- (सविनय) महारानी जी की जय हो। (दो रत्न भेंट स्वरूप महारानी के सामने रखता है।)

मदन मंजरीः- (मुस्कुराहट के साथ) आइये, सौदागर! (बैठने का संकेत करती हुई) इधर बैठिये! मैंने कष्ट दिया आपको।

सुखानन्दः- (बैठते हुये) इसमें कष्ट की क्या बात है महारानी जी! यह तो आपकी उदारता का प्रमाण है। वैसे आपके दर्शनों का सौभाग्य भी कब प्राप्त होता।

मदन मंजरीः- (सौदागर से)।

किस नगरी में धाम है, कौन वंश क्या नाम।
किस कारण आये यहाँ, करते हो क्या काम।।

सुखानन्दः- महारानी जी!

नगर वैजयन्ती विषैं, हैं मेरा लघु धाम।
सुखानन्द कहते मुझे, जवाहरात का काम।।
आये अपना देश तज, करने को व्यापार।
दर्शन पाये आपके, मन में हर्ष अपार।।

मदन मंजरीः- (ललचाई नजर से) प्यारे सौदागर?

जब से देखा आपको, लगा कलेजे तीर।
काम-अग्नि को शान्त कर, मेटो मन की पीर।।
दासी बन सेवा करूँगी करो ऐश आराम।
नहीं भूल कर भी कहीं, जाने का लो नाम।।

सुखानन्दः- (कुछ दूर खड़े होते हुये स्वतः) ओह! यहाँ तो कुछ और ही ढंग नजर आ रहा है। लेकिन मैं अपने धर्म पर दृढ़ रहुँगा।

दुराचार दुःख रूप है, शील सुखों की खान।
अमृत को तजकर नहीं करूँ, मैं विष का पान।।
(प्रगट, महारानी से)
तुम माता मैं पुत्र हूँ, करो जरा पहिचान।
पाप कर्म मैं नहीं करूँ, जाय भले ही प्राण।।

मदन मंजरीः- (समझाने के तौर पर)

नादानी की बात को, छोड़ अरे नादान।
सभी तरह से मिलेगा, मान और सम्मान।।

सुखानन्दः- (दृढ़ता के साथ) मैं ऐसे मान और सम्मान का भूखा नहीं हूँ, जिसके बदले में मुझे धर्म और ईमान बेचना पड़े।

मदन मंजरीः- (नम्रता पूर्वक) शायद आप मुझसे नाराज हो गये हैं, तभी तो दूर जाकर खडे हो गये।

सुखानन्दः- नहीं माता जी! मैं आपसे नाराज क्यों होऊँगा?

मदन मंजरीः- (आग्रह पूर्वक) तो फिर इधर बैठिये ना।

(सुखानन्द पुनः पीठिका पर बैठ जाता है।)

मदन मंजरीः- (दासी से) दासी! जाकर दो बीड़े पान के तो ले आ।

दासीः- (सादर) अभी लाई महारानी जी।

(दासी का प्रस्थान)

मदन मंजरीः- (उठती हुई) लो आओ सौदागर! तब तक जरा महल की शोभा देख लो।

सुखानन्दः- (खडे होकर) अच्छा, चलिये महारानी जी!

(दोनों कुछ ही दूर चलते हैं कि सहसा समाने का पर्दा उठाता है पर्दे के उठते ही शयन कक्ष दिखाई देता है। सामने सुन्दर शैया बिछी है।)

मदन मंजुरीः- (शैया की ओर बढ़ती हुई) आओ, सौदागर! कुछ देर यहाँ विश्राम करो।

(शैया पर जाकर बैठ जाती है।)

सुखानन्दः- (दूर खड़े रहकर) यह आपका शयन कक्ष है महारानी जी! यहां तो केवल महाराज ही ठहर सकते हैं।

मदन मंजरीः- (तैश में आकर) यदि आप हर बात मेरी इच्छा के विरुद्ध करेंगे तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा सौदागर!

सुखानन्दः- (कड़ाई के साथ) सत्य पर चलने वाले बाधाओं से नहीं घबराया करते महारानी!

मदन मंजरीः- (चेतावनी के बतौर) सौदागर! अब भी समय है। सोच लो हमारी बात मान लेने पर स्वर्गीय सुख मिल सकते हैं। और न मानने पर.....।

सुखानन्दः- (बीच ही में जाने के इरादे से) बस ये स्वर्गीय सुख आप ही को मुबारक हो महारानी जी! अब मैं जा रहा हूँ। (जाना चाहता है)

(सहसा दासी पान के बीड़े लेकर आ जाती है।)

मदन मंजरीः- (सुखानन्द से) जरा रुको सौदागर! ये पान का बीड़ा तो लेते जाओ।

सुखानन्दः- (दूर ही से) धन्यवाद!

(सुखानन्द का तेजी से एक ओर प्रस्थान)

मदन मंजरीः- (दासी से) दासी! वह निगौड़ा तो एक दम बुद्धू ही निकला। मैंने उसे हर प्रकार का प्रलोभन दिया, मगर वह निखट्टू, जरा भी नहीं पसीजा। दासी! उसने मेरा सरासर अपना किया है। उससे मैं बदला लिये बिना नहीं रह सकती। (कुछ सोचकर) लेकिन बदला किस तरीके से लिया जाये?

दासीः- (कुछ देर मन ही मन सोचती हुई) उं.....ऽऽऽ! हां, मैं बताऊं तरीका महारानी जी।

मदन मंजरीः- (जिज्ञासा पूर्वक) अच्छा, जल्दी बता। कहीं वह नगर छोड़, चला नहीं जावे।

दासीः- (समझाती हुई) महारानी जी! यहां कुछ त्रियाचरित्र रचना पड़ेगा। आप अपने सिर के बाल बिखेर लीजिये अंगियां और साड़ी ब्लाउज को इधर-उधर से फाड़ लीजिये। और शोक मुद्रा बनाकर बैठ जाइये। मैं दरबार में महाराज को जाकर उस सौदागर की शिकायत कर देती हूं, कि महल में जाकर सौदागर ने महारानी जी का शील भंग करने की कुचेष्टा की। फिर हम दोनों ने मिलकर धक्के देकर उसे बाहर निकाला। यदि विश्वास न हो तो आप स्वयं महल में जाकर देख लीजिये कि महारानी जी की क्या दशा हो रही है।

मदन मंजरीः- (हर्षित मन) उपाय तो तूने बहुत ही श्रेष्ठ बताया है दासी! अब तू शीघ्र महाराज के पास दौड़कर चलीजा।

दासीः- (मुड़कर) लीजिये, मैं जा रही हूं।

(दासी के जाने के बाद महारानी भी उठकर दूसरी ओर चली जाती है।)

दृश्य दूसरा

(**स्थानः-** हंसद्वीप का राज दरबार, सामने सिंहासन खाली है। मंत्री गण कोतवाल आदि यथा स्थान बैठे महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं सहसा एक ओर से महाराज समर विजय सिंह क्रोध मुद्रा में प्रवेश करते हैं, सभी लोग सम्मान प्रदर्शित करने हेतु खडे हो जाते हैं।)

महाराजः- (प्रधान को सम्बोधित करते हुये) प्रधान जी! आपके आग्रह अनुसार हम स्वयं महल में जाकर देख आये हैं। जिससे हमें पूर्ण विश्वास हो गया है, कि दूती ने आकर झूंठी शिकायत नहीं की थी। उस रत्नों के व्यापारी सुखानन्द ने महारानी के शील हरण की पूरी चेष्टा की है। महारानी पर हमें पूर्ण विश्वास था, वह शीलवती है। भला बिना बात सेठ सुखानन्द पर कैसे लांछन लगा देती। आखिर उसे भी तो अपनी इज्जत प्यारी है।

प्रधानः- (सविनय) ठीक है महाराज! यदि घटना सत्य प्रमाणित हुई, तो सुखानन्द अवश्य सजा के पात्र होंगे।

महाराजः- (कोतवाल से) कोतवाल साहब!

कोतवालः- (सादर) आज्ञा कीजिये महाराज।

महाराजः- (आदेश पूर्वक) उस रत्नों के व्यापारी सुखानन्द को शीघ्र दरबार में हाजिर करें। यदि वह सीधी तरह नहीं आये, तो गिरफ्तार करके लाया जाये।

कोतवालः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

(कोतवाल का प्रस्थान)

महाराजाः- आज तक, कोई विदेशी व्यापारी ऐसा नहीं आया, जिसने ऐसा नीच उदाहरण पेश किया हो। सुखानंन्द वास्तव में बड़ा कमीना निकला। उसने ऐसी करतूत करके वैश्य कुल को बदनाम किया है।

(कोतवाल के साथ सुखानन्द का प्रवेश। साथ में कुछ व्यापारी भी हैं।)

सुखानन्दः- (सविनय) महाराज की जय हो। कहिये महाराज! पुनः कैसे याद फरमाया श्रीमान्! ने।

महाराजः- (सक्रोध) सुखानन्द! हमें मालूम नहीं था कि तुम शरीफ साहूकार के भेष में इज्जत के लुटेरे हो। इन्सान के रूप में शैतान हो। तुमने हमारी इज्जत को बट्टा लगाने का कार्य तो किया ही, साथ में वैश्य कुल को भी कलंकित किया है।

एक नेक व्यापारी समझ कर हमने तुम्हें इज्जत और सम्मान दिया और बाद में महलों में जाने की स्वीकृति भी दे दी। जिसका तुमने नाजायज फायदा उठाया। अब बताओ, तुम्हें इस नीच हरकत की क्या सजा दी जाये?

सुखानन्दः- (ताज्जुब के साथ) आप यह क्या फरमा रहे हैं महाराज? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है-

महाराजः- अब ऐसे समझ में कैसे आयेगा? समझ में तो तब आएगा जब शूली पर टाँगे जाओगे।

सुखानन्दः- लेकिन महाराज, मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है, जिससे आप इतने क्रुद्ध हो रहे हैं?

महाराजः- हूँ! अपराध तो हमने किया था जो तुम्हें महलों में जाने दिया। (गुस्से में) सुखानन्द! तुमने हमारे साथ बहुत बड़ा विश्वास घात किया है। यदि वहां दासी नहीं होती तो भला अकेली महारानी अपनी रक्षा कैसे कर सकती थी।

सुखानन्दः- किन्तु महाराज! मैंने महारानी के साथ.....

महाराजः- (बीच में घुड़ककर) बस चुप रहो। क्या तुमने हमारी शीलवती महारानी का शील भंग करने का प्रयास नहीं किया? महारानी के शरीर के वस्त्र क्या तुमने नहीं फाड़े? अपने आप ही फट गये हैं?

सुखानन्दः- (दोनों हाथों से अपने कान दबाते हुये स्वतः) ओह, परमेश्वर! मैं यह क्या सुन रहा हूँ? मुझे अनायास ही यह कौन से पाप का बदला मिल रहा है? वास्तव में ठीक ही तो कहा है कि **"स्त्रियाचरित्रं' पुरूषस्य भाग्य, देवों न जातिति कुतो मनुष्यः'**! (प्रगट महाराज से) महाराज! महारानी मेरी माता के समान है। मैंने उनके प्रति कभी कुदृष्टि भी रखी हो तो मेरी ये दोनों आँखें फूट जायें। आप मुझ पर

यह मिथ्या दोष किसके कहने पर लगा रहे हैं महाराज?

महाराजः- अब माता कहकर अपने कुकृत्य पर परदा डालने की कोशिश मत करो। हमने स्वयं महल में जाकर वहाँ के सारे वातावरण को देखा है। तुम्हारी काली करतूतों की झलक वहाँ स्पष्ट दिखाई दे रही है।

सुखानन्दः- किन्तु महाराज! दासी भी तो वहाँ मौजूद थी। उसे बुलाकर सारी बात का निर्णय कर लिया जाये।

महाराजः- (प्रहरी से) प्रहरी! शीघ्र जाकर दासी को बुला लाओ।

प्रहरीः- (सादर) जैसी आज्ञा महाराज।

(प्रहरी का प्रस्थान)

प्रधानः- (सविनय, महाराज से) महाराज! मेरा नम्र निवेदन है कि इस मामले में किसी तरह की जल्दबाजी नहीं की जाये। ताकि सही तथ्य सामने आ सके।

महाराजः- ठीक है प्रधान जी! पूरी सतर्कता बरती जायेगी।

(एक ओर से प्रहरी के साथ दासी का प्रवेश)

दासीः- (सविनय) आज्ञा कीजिये महाराज।

महाराजः- (तेज स्वर में) दासी! तुम्हें सारी बात सच-सच बतानी होगी। यदि जरा भी झूँठ बोला तो शूली पर चढ़ा दी जाओगी।

दासीः- (कर बद्ध) बिलकुल सच कहूंगी महाराज!

महाराजः- जब तक सुखानन्द महल में रहे, तू कहाँ थी?

दासीः- मैं वहीं थी महाराज।

महाराजः- अच्छा तो तुमने जो आकर शिकायत की थी कि रत्नों के सौदागर ने महारानी के शील हरण की चेष्टा की। क्या यह बात बिल्कुल सत्य है?

दासीः- (इधर-उधर देखकर, घबराये स्वर में) जी.....जी महाराज, नहीं।

महाराजः- (साश्चर्य) नहीं! तो फिर सत्य क्या है? तुमने झूंठी खबर कैसे दी?

दासीः- महारानी जी के कहने पर।

महाराजः- महारानी ने सेठ सुखानन्द पर यह झूँठी तोहमत क्यों लगाई?

दासीः- महारानी जी की बात न मानने पर उन्होंने यह षड़यन्त्र रचा था।

महाराजः- (सक्रोध, कोतवाल को आदेश देते हुये) कोतवाल जी उस दुष्टा महारानी मदन मंजरी को महल से घसीटते हुये शूली तक ले जाओ और तुरन्त उसे शूली पर लटका दो। मैं ऐसी दुराचारिणी स्त्री का मुँह भी नहीं देखना चाहता।

सुखानन्दः- (नम्रता पूर्वक) महराज! माता जी को इतना कठोर दण्ड मत दीजिये। यह घटना सब मेरे ही कारण हुई है। यदि मैं वहाँ नहीं जाता तो ऐसा नहीं होता। अतः इसका मुझे भारी खेद हैं। माता जी के लिये कोई अन्य दण्ड निर्धारित कर दीजिये महाराज!

महाराजः- (कुछ सोचकर) अच्छी बात है सुखानन्द जी! हम आपकी इच्छा का स्वागत करते हुये उसे हप देश निर्वासन की सजा देते हैं। (कोतवाल से) कोतवाल जी! महारानी को ले जाकर हमारे देश की सीमा के बाहर छोड़ आओ।

कोतवालः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

(कोतवाल का प्रस्थान)

महाराजः- (सुखानन्द से) सेठ सुखानन्द जी! आप समान सच्चरित्र पुरुष को व्यर्थ में अपमानित होना पड़ा। इसका हमें अत्यन्त खेद है। इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं।

सुखानन्दः- (खडे होकर) इसमें क्षमा की क्या बात है महाराज! मेरे अशुभ कर्म के उदय से यह सब कुछ हुआ। किन्तु आपके सत्यासत्य न्याय से मेरा मिथ्या कलंक दूर हो गया। इसका मुझे हर्ष है। अब मुझे अपने देश की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दीजिये।

महाराजः- (उठते हुये प्रधान से) प्रधान जी! सेठ सुखानन्द का प्रस्थान सम्मान पूर्वक हो, इसका पूरा ध्यान रखें।

प्रधानः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

(एक ओर महाराज, तथा दूसरी ओर अन्य सबका प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

(**स्थानः**- जंगल! सुखानन्दे एवं उनके साथियों का प्रवेश।)

सुखानन्दः- (साथियों से) लो भाई! अब यहाँ कुछ देर विश्राम करें। वैजयन्ती अब अधिक दूर नहीं है। भोजन वगैरह से निवृत्त होकर फिर प्रस्थान करेंगे।

साथी1:- (वहाँ रुकते हुये) ठीक है सुखानन्द जी! यहीं विश्राम किया जाये।

(सब लोग स्वच्छ स्थान पर बैठ जाते हैं। एक ओर से एक पथिक आता दिखाई देता है।)

सुखानन्दः- (पथिक के करीब आने पर) क्यों बन्धु! आप कहाँ के निवासी हैं, और कहरँ को जा रहे हैं?

पथिकः- (रुक कर) मैं वैजयन्ती नगरी का रहने वाला हूँ एवं उज्जैनी नगरी को जा रहा हूँ।

सुखानन्दः- अब वैजयन्ती यहाँ से कितनी दूर है?

पथिकः- (संकेत द्वारा) यह जंगल वैजयन्ती का ही तो है। वैजयन्ती नगरी अब नजदीक ही है। (कुछ रुककर) हाँ, लेकिन आपने अपना परिचय नहीं दिया।

सुखानन्दः- (परिचय देते हुये) क्या आपने हमको नहीं पहिचाना? हम सब वैजयन्ती के ही तो रहने वाले हैं। मेरा नाम सुखानन्द है। श्रेष्ठी महीपाल मेरे पिता हैं।

पथिकः- (पहिचान कर) अच्छा, अच्छा! आप सुखानन्द जी हैं। (कुछ सोचकर) तो

आप लोग तो शायद विदेश गये थे ना?

सुखानन्दः- हाँ बन्धु! हम सब हँसद्वीप गये थे। अब वापस लौटकर आये हैं। मगर क्या आप हमारे पिताजी को जानते हैं?

पथिकः- अहँ ह! उन्हें भला कैसे नहीं जानूँगा सुखानन्द जी।

सुखानन्दः- तो माताजी -पिताजी प्रसन्न तो हैं?

पथिकः- हां, हां! वे तो प्रसन्न ही हैं। किन्तु ....(कहते-कहते) रुक जाता है।

सुखानन्दः- (उत्सुकता पूर्वक) 'किन्तु क्या' बन्धु! आप कहते-कहते रुक कैसे गये?

पथिकः- (दुखद स्वर में) कुछ कहा नहीं जाता सुखानन्द जी। बड़ा ही दुखद संवाद है।

सुखानन्दः- (अधीर होकर) कैसा दुखद संवाद बन्धु! आप शीघ्र बताइये। मेरा दिल अधीर हुआ जा रहा है।

पथिकः- क्या बताऊँ सुखानन्द जी! आपके पिताजी ने एक कुलटा स्त्री के कहने पर आपकी पतिव्रता एवं शीलवती पत्नि पर दुराचार का मिथ्या दोष लगाकर उसे भयानक वन में भेज दिया है।

सुखानन्दः- (माथा ठोक कर) ओह.....मनोरमा.....(कह कर मूर्च्छित हो जाते हैं।) सब लोग उन्हें सचेत करने की चेष्टा करने में लग जाते हैं।)

पथिकः- (सुखानन्द से) आप तो बुद्धिमान हैं सुखानन्द जी! होनहार को कौन टाल सकता है। अब तो सिवा धैर्य और संतोष के अन्य चारा भी क्या रह गया है?

सुखानन्दः- (सचेत होकर वे दुखद स्वर में) अब कैसे धैर्य और संतोष रह सकता है बन्धु! मेरे लिये अब सारा संसार अन्धकारमय बन गया है। मनोरमा के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।

साथी2:- (तसल्ली दिखाते हुये) सुखानन्द जी! आप चिन्ता न करें। पहले शीघ्र घर चलकर पुनः हम सब आपको साथ लेकर मनोरमा की तलाश में चलेंगे।

सुखानन्दः- नहीं मित्र! अब नहीं जाऊँगा। आप लोग वैजयन्ती जाकर अपने परिवार जनों से मिले। और मेरी सारी सम्पत्ति मेरे माता पिता को दे दें। मैं अब बिना मनोरमा की खोज किये घर नहीं आऊँगा।

साथी1:- आपको इस प्रकार दुखी हालत में छोड़कर हम कैसे जा सकते हैं। सुखानन्दजी।

सुखानन्दः- नहीं आप दोनों को जाना ही पड़ेगा। मेरी आप जरा भी चिन्ता न करें। मनोरमा का पता लगते ही मैं चला आऊँगा।

साथी2:- हमारा मन तो नहीं मानता सुखानन्द जी! पर आप नहीं मानते तो विवश हो चले जाते हैं।

(साथियों का एक ओर प्रस्थान! दूसरी ओर पथिक भी चला जाता है। बाद में उठकर सुखानन्द गमगीन हालत में जाते हैं।)

दृश्य चौथा

(**स्थान**:- वैजयन्ती का राज दरबार, महाराज परमसेन उच्चासन पर विराजे हैं। मंत्री गण सेनापति आदि यथा स्थान बैठे हैं। एक ओर सेठ महीपाल एवं दूसरी ओर अजितसेन खडे हैं।)

परमसेन:- (अजितसेन से) हाँ, अजितसेन! आप इस विषय में क्या जानते हैं? राजकुमार के अभिन्न मित्र होने के नाते आप से तो कुछ छिपा नहीं होगा। अतः आप जो कुछ जानते हैं सच-सच बताइये।

अजितसेन:- (सविनय) महाराज! राजकुमार ने मनोरमा को एक बार अपने भवन की अट्टालिका पर खड़ी देखा। तभी से वे उसके रूप पर मुग्ध हो गये। मैंने उन्हें बहुत समझाया 'कि मनोरमा पतिव्रता एवं शीलवती है। अतः आप उसके प्रति दुर्विचार न रखें। मगर उन्होंने मेरी बात को नहीं माना और कुन्था दूती को बुलाकर मनोरमा के पास भेजा। साथ में अपनी प्रेमाकाँक्षा जाहिर करते हुये एक पत्र लिख कर भी दूती को दे दिया। उसके उत्तर में मनोरमा ने जो कुछ लिखकर दिया, वह (पत्र निकाल कर महाराज के समक्ष रखते हुय) इस पत्र में है।'

परमसेन:- (पत्र उठाकर) क्या यह मनोरमा का पत्र है?

अजितसेन:- (सादर) जी हां महाराज।

परमसेन:- (प्रधान से) प्रधान जी! जरा इस पत्र को पढ़िये।

प्रधान:- (पत्र लेते हुये) जैसी आज्ञा महाराज।

(पत्र पढ़ते हैं)

भाई कामसेन!

राजा जहां पिता तुल्य होता है, वहाँ राजकुमार भाई के समान। किन्तु आपने न जाने किस भ्रम में पड़कर मुझे यह पत्र दिया है जो आपकी प्रतिष्ठा एवं पद को कलंकित करता है। साथ ही इस पत्र में मेरे शील को भी दोष लगाने का प्रयास किया गया है। अतः उत्तर देकर मैं उस दोष से मुक्त होना चाहती हूँ।

भाई! आप राजकुमार हैं। अतः आपका फर्ज है कि सदैव प्रजा की बहू-बेटियों की इज्जत अस्मत की रक्षा करें। न कि अपने कर्तव्य से विमुख हो स्वयं ही, उनकी इज्जत लुटने को आमादा हो जाये।

आशा है अपने विवेक को ठीक रखकर भविष्य में इस राह में उतरने का प्रयास नहीं करेंगे।

आपकी बहन मनोरमा

परमसेनः- (हर्ष पूर्वक, स्वतः) धन्य मनोरमा! तू धन्य है। (अजितसेन से) हां! फ़िर क्या हुआ अजितसेन?

अजितसेनः- (आगे की घटना सुनाते हुये) हां, सुनिये महाराज! अपने षड़यन्त्र में असफल होकर राजकुमार ने दूती द्वारा मनोरमा की सास को यह कहलवा दिया कि मनोरमा का राजकुमार के साथ अनुचित संबंध है। वह रात्रि में राजकुमार के पास जाती है। मैंने कई बार अपनी आंखों से देखा है। दूती की इस बात को सही मानते हुये (सेठ महीपाल की ओर संकेत कर) सेठ महीपाल जी ने बिना कुछ सोचे विचारे उस सती को घर से निकाल भयानक जंगल में भिजवा दिया महाराज!

परमसेनः- (खेद प्रगट करते हुये) ओफ! बड़ा गजब हो गया। (सेठ-महीपाल से) सुना सेठ जी। यह क्या किया आपने?

महीपालः- (भयभीत स्वर में) महाराज! वास्तव में मुझसे बड़ा अनर्थ हो गया।

परमसेनः- आपने बिना निर्णय लिये और बिना हमें सूचित किये, एक महान शीलवती निरपराध नारी पर भारी कहर ढ़ा दिया। भगवान जाने अब वह किस दशा में होगी। सक्रोध (सेनापति से) सेनापति! राजकुमार कामसेन को और कुन्था दूती को ले जाकर फाँसी पर लटकादो।

प्रधानः- (सविनय आग्रह पूर्वक) क्रोधावेश में इतना कठोर दण्ड न दीजिये महाराज! राजकुमार को प्राणदण्ड देना उचित नहीं है। कोई अन्य दण्ड निर्धारित कर दीजिये।

परमसेनः- (कुछ सोचकर) अच्छा प्रधान जी। हम आपके आग्रह पर उन दोनों के लिये देश निर्वासन की सजा नियुक्त करते हैं। (सेनापति से) सेनापति! राजकुमार को और दूती को शीघ्र ले जाकर देश की सीमा से बाहर कर आओ।

सेनापतिः- (सादर) जैसी आज्ञा महाराज।

(सेनापति का प्रस्थान)

परमसेनः- (महीपाल से) सेठ महीपाल जी! आप जब तक अपने पुत्र एवं पुत्र बधू मनोरमा को खोजकर यहाँ वापस नहीं लायेंगे, तब तक आप इस नगर में नहीं रह सकेगें। अतः आप उनकी तलाश में आज ही यहां से रवाना हो जायें।

महीपालः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

परमसेनः- (प्रधान से) प्रधान जी। नगर में ढिंढोरा पिटवादें कि जिस किसी को मनोरमा का पता चले, वह राज दरबार में सूचित कर दे। उसे पारितोषिक दिया जायेगा।

प्रधानः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

(महाराज परमसेन उठकर एक ओर चलें जातें हैं तथा दूसरी ओर अन्य लोगों का प्रस्थान)

दृश्य पांचवां

(**स्थानः**- जंगल। सुखानन्द योगी के भेष में मनोरमा की तलाश में भटकता हुआ आता है। दाढ़ी और शिर के बाल बढ़े हुये हैं कन्धे पर काला कम्बल है।)

सुखानन्दः- (परेशानी के स्वर में, स्वतः) ओफ! जंगल का चप्पा-चप्पा छान डाला। अनेक ग्राम और नगर देख लिये, मगर मनोरमे! कहीं तेरा पता नहीं चला। पूरे छह महीने होने आये, तेरी तलाश में भटकते हुय। कंटकों से पांव भी छलनी हो गये। मगर तू नहीं मिली। आखिर तू कहाँ चली गई?

गाना

हे पक्षी गण तुम्हीं बताओं, वह मनोरमा कहाँ गई।
वृक्षों क्या तुमने देखा है, वह मनोरमा कहाँ गई।।
जीवधारियों कुछ तो तुम, संकेत करो जिससे समझूँ।
इधर गई या उधर गई, गर खबर नहीं तो कहाँ गई।।
हे हिंसक पशुओं तुमने क्या, उससे क्षुधा बुझा डाली।
उदर चीर कर ही बतलादो, वह मनोरमा कहाँ गई।।
धरती औ आकाश बताओ, तुमसे तो कुछ छुपा नहीं।
समा गई क्या तुम में जाकर, प्रिय मनोरमा कहाँ गई।।

(गाना समाप्त कर) ओह! कोई नहीं बताता। तो अब कहाँ जाऊँ? (इधर-उधर) ऐसा लगता है, कि शायद किसी ग्राम के नजदीक आ गया हूँ। (चलते हुये) चलूँ। जरा आगे चलने पर ही कुछ पता चलेगा। (सुखानन्द का एक ओर प्रस्थान)

दृश्य छटवां

स्थानः- बल्लभपुरी का बाहिरी भाग। कुऐं पर तीन पनिहारियाँ पानी भर रही हैं। तथा परस्पर बातचीत भी करती जाती हैं। एक ओर से सुखानन्द आ जाता है; वह कूऐं से कुछ दूर खड़ा रह कर पनिहारियों की बात चीत सूनता है।

पनिहारी1:- (पानी खींचती हुई, रुक कर)

सखी जरा यह तो बतलाओ, कहाँ गई वह नार।
जिसको जंगल से लाया था, यहाँ का राजकुमार।।
शील हरण करना चाहा था देख उसे असहाय।
मगर शीलवन्ती की रक्षा की देवों ने आय।।

पनिहारी2:- (आगे का हाल बताती हुई)

रक्षा हित क्षण में आकर तब चला गया वह वीर।
गर वह चाहता राजपुत्र को देता पल में चीर।।
क्षमा मंगाई शीलवती से देव गया समझाय।
जहाँ से लाये उसी जगह तुम दो इसको पहुंचाय।।

पनिहारी3:- (क्रम चालू रखती हुई)

पहुंच गई जंगल में वापस, वह सतवन्ती नार।
भय से व्याकुल रोती प्रतिपल, प्रभु से करे पुकार।।
तभी सेठ धनदत्त बनारस के आये उस ठौर।
उसे ले गये साथ वे अपने सुना यही सब ओर।।

पनिहारी1:- (पुनः कुछ याद करके)

था मनोरमा नाम सती का, सुन्दर थी वह नार।
रूप रंग से वह लगती थी, देवी का अवतार।।
कौन निरदयी था पति उसका जो नहीं किया विचार।
कोमल कली समान पत्नि पर, किया यूं अत्याचार।।

सुखानन्दः- (सहसा आगे आकर, पनिहारियों से)

क्या बतलाऊँ बहनों तुमको, दुःख है मुझे अपार।
बात सुनी मैंने तुम सबकी, मिला मुझे आधार।।
वह मनोरमा मेरी पत्नि, मैं उसका भरतार।
इसे करिश्मा भाग्य का समझो, या रूठा करतार।।

पनिहारी2:- (सुखानन्द का मखौल करती हुई) देखो सखियों। यह योगी रस्ते चलते ही उस सुन्दरी को अपनी पत्नि बताने लगा है।

पनिहारी1:- (मुंह बिगाड़ कर) हाँ पनिहारी! साधु बनता है, ढ़ोंगी कहीं का।

सुखानन्दः- (दुखद स्वर में) बहनों! मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। मनोरमा मेरी ही पत्नी है। मैं वैजयन्ती नगरी का श्रेष्टि पुत्र हूँ। व्यापार हेतु मैं विदेश में चला गया था। मेरे पीछे एक कुलटा स्त्री के कहने पर मेरे माता-पिता ने उसे दुराचारिणी समझ घर से निकाल जंगल में पहुंचा दिया।

पनिहार3:- (दुखपूर्वक) हाय, हाय बहुत बुरा किया उन लोगों ने।

सुखानन्दः- (आगे की बात बताते हुये) आगे और सुनो। जब मैं विदेश से लौट कर आया तो रास्ते में एक व्यक्ति जो वैजयन्ती का रहने वाला था, उसके द्वारा मनोरमा के साथ हुई दुखद घटना का वृतान्त सुना। तब मैं वहीं से योगी का भेष बना उसकी तलाश में निकल पड़ा और पूरे छह माह भटकते रहने के बाद संयोगवश आज इधर आ निकला, तथा आप लोगों की जुबानी उस दुखियारी का सारा वृतान्त सुना।

अब इतना और बताने का कष्ट करें कि मेरी पत्नी अब मुझे कहाँ मिलेगी?

पनिहारी3:- (आत्मीयता जाहिर करती हुई) यदि वह वास्तव में तुम्हारी पत्नी है, तो यहां से सीधे बनारस चले जाओ। वहां धनदत्त नामक श्रेष्ठी की तलाश कर लेना। उन्हीं के यहां तुम्हारी पत्नी मिल जायेगी।

सुखानन्दः- (कुछ विचार करते हुये स्वतः) धनदत्त श्रेष्ठि.....बनारस....हां, हां ठीक है। धनदत्त तो मनोरमा के मामा होते हैं। वही तो है उसका ननिहाल (पनिहारियों से) अच्छा बहिनों! तुमने मेरी जटिल समस्या को हल कर दिया। इसके लिये मैं उम्र भर तुम्हारा अहसान नहीं भुलूंगा। अब मैं सीधा बनारस जाता हूं।

(सुखानन्द एक ओर चल देता है। पनिहारियां भी घडे शिर पर रखकर दूसरी ओर चली जाती हैं।)

दृश्य सातवां

स्थानः- बनारस में श्रेष्ठी धनदत्त का भवन। एक कक्ष में मनोरमा शयन कर रही है। सहसा उसकी सखी चंपकला प्रवेश करती है।

चंपकलाः- (मनोरमा को सोती देख दूर से ही) ओह! आज मनोरमा अभी तक सो रही है? (मनोरमा को हाथ से जगाती हुई) सखी! आज उठोगी या नहीं। देखो सूर्योदय होने को आ गया है।

मनोरमाः- (चौंक कर उठती हुई, घबराहट के साथ) ओह.....तूने यह क्या किया री? मुझे जगा क्यों दिया?

चंपकलाः- (मुस्कराती हुई) क्या उठना ही नहीं चाहती थी आज?

मनोरमाः- (दीर्घ स्वास छोड़ती हुई) क्या बताऊँ चंपकला! तूने तो मुझे जगाकर मेरा सारा सुख, आनन्द ही मुझसे छीन लिया।

चंपकलाः- (साश्चर्य) सखी। तुम यह क्या कह रही हो? मैंने कौन सा सुख छीन लिया तुम्हारा? कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही थी?

मनोरमाः- (शान्त स्वर में) हां हां री! वास्तव में मैं एक सुखद स्वप्न मे डूबी हुई थी, कि सहसा तूने आकर जगा दिया।

चंपकलाः- (आग्रह पूर्वक) कैसा स्वप्न देख रही थी सखी। जरा मुझे भी तो सुनाओ। (पास में बैठ जाती है।)

मनोरमाः- (हताश भाव से) क्या सुनाऊँ? चंपकला! बड़ा दुख हो रहा है।

चंपकलाः- (जिद पूर्वक) अब सुनाओगी भी या यूं ही दुख करती रहोगी?

मनोरमाः- अच्छा बाबा सुनाती हूं। (गाने के स्वर में स्वप्न सुनाती है)

गाना

सुरनी सखी तोहे सपना सुनाऊं,
मैंने सपने में देखे सांवरिया,
हो मैंने सपने में देखे सांवरिया।।
भटक रहे थे सखि वो वन-वन,
हां, हां, हां, हां।
भस्मी रमाई थी सारे बदन में
हां, हां, हां, हां, हां
योगी बने थे, शिर पर बाल घने थे,
उनके कांधे थी काली कमलिया,
हां उनके कांधे थी
काली कमलिया।। सुनरी.....
(मौन रह जाती है)

चंपकलाः- (मनोरमा को मौन देख) हां, और आगे सुना! चुप कैसे हो गई?

मनोरमाः- (निराश होकर) क्या सुनाऊं री। जैसे ही मैंने उन्हें पहिचाना, तो मैं हर्ष से फूली नहीं समाई।

जागी मन में इक आश नई, मैं दोड़के उनके पास गई।
वे मधुर-मधुर सखि मुस्काये, कुछ कहने को आगे आये।
तब ही तूने आ जगा दिया, दुख दूना फिर से लगा दिया।।

चंपकलाः- (हर्षित स्वर में) ओह.....यह बात है। (कुछ सोचकर) तो सखी! यह भी तू याद रख कि अब शीघ्र ही तेरे स्वामी तुझसे मिलेंगे। वे तेरी तलाश कर रहे हैं, और खोजते-खोजते एक दिन अवश्य यहाँ पहुँच जायेंगे।

मनोरमाः- (निराशा पूर्वक) अरी पगली! कहीं सपने भी सच्चे होते हैं? न जाने वे कहां और किस दशा में होंगे।

चंपकलाः- (धैर्य बंधाती हुई) सखी! विशेषकर आखिरी रात के सपने सच्चे होते हैं। कुछ दिन धैर्य रख! वे अवश्य तुझसे आकर मिलेंगे। (उठती हुई) अच्छा, अब जल्दी स्नानादि से निवृत्त हो फिर जिन मंन्दिर चलना है।

मनोरमाः- (उठकर) अच्छा आ! अभी चलतीं है।

(दोनों का एक ओर प्रस्थान)

दृश्य आठवां

(स्थानः- जंगल! सेठ महीपाल एक ओर से चले आ रहे हैं। कंधे पर डोर लौटा लटक रहा है, बगल में गठरी दबाये हैं।)

महीपालः- (स्वतः) महाराज का आदेश पाकर पुत्र तथा पुत्र-वधू मनोरमा की तलाश

में निकले आज बहुत अरसा हो गया? किन्तु कहीं कुछ पता नहीं चला।.....क्या किया जाये? बिना उन्हें लिये वापस घर भी तो नहीं लौट सकता। (कुछ सोचकर) मेरा ख्याल है कि अब बनारस चला जाये। संभव है वहां कुछ पता चले।.....ठीक है। वही चलता हूं।

(धीरे धीरे एक ओर निकल जाते हैं।)

दृश्य नौवां

(स्थानः- बनारस का एक उद्यान! एक ओर से सुखानन्द योगी के भेष में आते हैं।)

सुखानन्दः- (नगर की ओर देखकर, स्वतः) बडे-बडे भवनों से सुसज्जित यही है बनारस नगरी। लेकिन यहां मनोरमा को कहां खोजूं? (बाग में प्रवेश कर) बड़ा सुन्दर बगीचा है। भांति भांति के पुष्प लगे हैं। वृक्ष फलों से लदे हैं। दोपहर का समय है। कुछ देर वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम कर लिया जाये। बादु में मनोरमा का पता लगायेंगे।

(सुखानन्द स्वच्छ स्थान देखकर, हरी-हरी दूब पर लेट जाते हैं। कुछ ही देर में बाग की मालिन प्रवेश करती है।)

मालिनः- (एक योगी को वृक्ष की छाया में लेटा देख, स्वतः) अरे, अरे.....ये साधु महात्मा यहाँ कहाँ से आ टपके। (सुखानन्द के करीब जाकर) महात्मा जी! क्या आपको किसी ने नहीं बताया कि इस बाग में पुरुषों का आना मना है?

सुखानन्दः- (नम्रता पूर्वक) मालिन! बाग-बगीचे तो सार्वजनिक हुआ करते हैं, केवल स्त्रियों के लिये नहीं। यहाँ आकर कोई भी विश्राम कर सकता है। हां, यदि हमने किसी तरह का यहाँ नुकसान किया हो तो तुम कह सकती हो। फिर हम तो योगी ठहरे। घड़ी दो घड़ी यहां विश्राम करके अपनी राह चल देंगे।

मालिनः- किन्तु योगी महाराज! यह सार्वजनिक बाग नहीं है। यह यहां के श्रेष्ठी धनदत्त का बगीचा है। आज बसन्त का दिन है। अतः उनकी भानजी मनोरमा अपनी सखियों के साथ, अश्रु जल से बाग का सिंचन करने आयेगी। अतः उनके आने से पूर्व ही आप यहाँ से खिसक जाइये। वरना आपकी और मेरी दोनों की ही खैर मत समझिये।

सुखानन्दः- (मधुर स्वर में) मालिन! हमें एक बात बताओगी?

मालिनः- कौन सी बात?

सुखानन्दः- यही, कि श्रेष्ठी धनदत्त की भानजी अश्रु जल से बाग का सिंचन क्यों करती है।

मालिनः- (नम्र होकर) स्वामी जी! मनोरमा बाई अपने पिया की वियोगिन है। पति से उनका विछोह हो गया है। बस इसलिये वे आशा की बेल को सींचा करती हैं। (कुछ सोचकर) अच्छा मैं, तो जा रही हूँ। पेड़ों को पानी देना है। फूलों की क्यारियों को

संभालना है। यदि वे आ जाये तो आप ही सारी बात का उत्तर दे देना।

सुखानन्दः- (मुस्कान के साथ) अच्छा मालिन।

(मालिन एक ओर चली जाती है। दूसरी ओर से मनोरमा अपनी सखी चंपकला के साथ प्रवेश करती है।)

चंपकलाः- (मनोरमा से) सखी! जब से तू यहाँ आई है, कभी मैंने तुझे प्रसन्न मुख नहीं देखा। सदैव विरह की आग में अपने आप को जलाये रहती है। (मनोरमा का हाथ पकड़ कर) देख सखी! आज तो बसन्त का दिन है। आज का दिन तो हास-परिहास और आमोद-प्रमोद में बिताना चाहिये।

मनोरमाः- (चंपकला से) क्या बताऊँ सखी! मैंने लाख बार मन को समझाने का प्रयत्न किया, पर मन है कि कभी मानता ही नहीं। उनकी याद पल भर के लिये मन से दूर नहीं हो पाती। न जाने प्राणनाथ कब दर्शन देंगे।

(आंखों में आंसू छलक आते हैं, उन्हें साड़ी के छोर से पोंछती है।)

सुखानन्दः- (मनोरमा की व्यथा सुन, स्वतः) तुम धन्य हो मनोरमे! तुम जैसी महान पतिव्रता को न मैं छोड़ कर विदेश जाता, और न ये मुसीबतें तुम पर आतीं। तुम्हारे दुखों का कारण मैं ही तो हूँ।

चंपकलाः- (सुखानन्द को देखकर, मनोरमा से) देखो सखी! जरा उधर तो देख! वे कोई महात्मा बैठे हैं। चल कर उनके दर्शन ही कर लें।

मनोरमाः- (सुखानन्द की ओर देखकर) सखी! इन महात्मा को देख कर ऐसे लगता है, जैसे मैंने पहले भी इन्हें कहीं देखा हो।

चंपकलाः- (सुखानन्द से) क्यों महात्मा जी! आप बिना आज्ञा इस बगीचे में कैसे चले आये?

सुखानन्दः- (उठते हुये) लो सुन्दरी! यदि किसी प्रकार एतराज है तो हम अभी चल देते हैं। घड़ी दो घड़ी विश्राम के लिये ही तो यहां ठहरे थे। अगर एतराज है तो हम अपना रास्ता लेंगे।

(सुखानन्द जाना चाहते हैं।)

मनोरमाः- (करबद्ध) हे स्वामी! आप क्रुद्ध न होइये। मेरी सखी का अपराध क्षमा कर दीजिये।

सुखानन्दः- (व्यंग पूर्वक) हुह! एक भागती है! दूसरी आग्रह करती है। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। योगियों से ऐसी मसखरी अच्छी नहीं होती।

(पुनः अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। मनोरमा और चंपकला को सुखानन्द से बातें करते देख मालिन भी उनके पास आकर खड़ी हो जाती है।)

मनोरमाः- (सुखानन्द से) स्वामी जी! यदि किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो आप अपना परिचय दीजिये।

सुखानन्दः- (मनोरमा से) सुन्दरी! हम योगियों का क्या परिचय! आज यहाँ तो कल वहाँ। और फिर हमारे परिचय से मतलब भी क्या? हम बड़ी दूर से चलकर आये हैं।

मनोरमाः- (पुनः आग्रह पूर्वक) स्वामी जी! आप कहाँ से चलकर आये हैं यही बतला दीजिये।

सुखानन्दः- (खीजकर) तुम नहीं मानोगी। तो लो सुनो।

हम योगी नहीं वियोगी हैं, वैजयन्ती ग्राम हमारा है।
महीपाल पिता माँ श्रीमती, के घर लीना अवतारा है।।
मुझको कहते सब सुखानन्द, प्रिय मनोरमा पत्नी मेरी।
उसके वियोग में ही हमने, यह भेष जोग का धारा है।।

मनोरमाः- (सुखानन्द के चरणों में गिरती हुई) स्वामी.....

सुखानन्दः- (हाथ के सहारे से) हां, मैं ही हूं मनोरमे! तुम्हें संकट में डालने वाला।

मनोरमाः- ऐसा न कहिये स्वामी! यह सब तो मेरे ही अशुभ कर्मों का फल था और आपको भी तो मेरे खातिर कितना कष्ट उठाना पड़ा। कहाँ, कहाँ मुझे खोजते फिरे।

सुखानन्दः- प्रिये! तुम्हें खोजने के लिये यह प्रण लेकर निकला था, कि यदि तुम नहीं मिली तो सारा जीवन इसी भेष में तुम्हारी तलाश में बिता दूंगा।

(सुखानन्द और मनोरमा की बातचीत सुन मालिन एक ओर चल देती है।)

मनोरमाः- (दुख पूर्वक) स्वामी! कैसी हालत बना ली है आपने? कितने कमजोर दिखाई दे रहे हैं आप?

सुखानन्दः- (मनोरमा का एक हाथ पकड़ते हुये) और तुम! जरा अपनी ओर भी तो देखो प्रिये! घर पर थी तब कैसी थीं। और अब?.....पहिचानने में भी नहीं आ रही हो। यह कैसा हाल कर लिया है- मनोरमे!

मनोरमाः- (दुखद स्वर में) स्वामी! क्या बताऊँ.....?

गाना

(**तर्ज**- हाल कुछ भी दिलों का न पूछो समन, आपका मुस्कराना गज़ब हो गया।)

हाल क्या मैं बताऊँ मेरे प्राणधन,
आपका छोड़ जाना, गजब ढ़ा गया।
आया जीवन में तूफान ऐसा मेरे,
सच कहूँ उसका आना गजब ढ़ा गया।
मैं थी भोली मुझे क्या थी जग की खबर,
कि यहाँ काले दिल के भी रहते बशर।
नाम मोटे मगर काम खोटे करें,
आग उनका लगाना गजब ढ़ागया।।
शील पर दोष मेरे लगाया गया,

मेरा घरबार मुझेसे छुड़ाया गया।
भेजदी तब श्वसुर जी ने वन में मुझे।
क्रोध में उनका आना गजब ढ़ा गया।।
तब अकेली मैं वन में भटकती रही,
क्या बताऊँ, कि कितनी मुसीबत सही।
पर रही धर्म पर अपने कायम सदा,
दुष्करम का सताना.....।।

सुखानन्दः- (बीच में ही रोक कर) बस करो प्रिये! तुम्हारी विपद कहानी बाद में सुनेंगे। पहले एक बात बताओ?

मनोरमाः- (नम्र स्वर में) पूछिये स्वामी!

सुखानन्दः- (मनोरमे! मेरे मिलने पर तुम्हें जितनी प्रसन्नता होनी चाहिये थी, उतनी हुई नहीं। इसका क्या कारण है? तुम्हारे चेहरे पर उदासी क्यों झलक रही है?)

मनोरमाः- (गम्भीर स्वर में) स्वामी! इसका भी एक कारण है। और वह है मेरे शिर पर लगा कलंक।

सुखानन्दः- (सरलता से) कैसा कलंक मनोरमे!

मनोरमाः- क्या आपको विदित नहीं कि मैं कलंकिनी ठहरा कर घर से निकाली गई हूँ?

सुखानन्दः- लेकिन मेरी नजर में तुम कलंकिनी नहीं हो।

मनोरमाः- संसार भला कब मानेगा प्राणेश्वर! संसार के समक्ष जब तक मेरे निर्दोष होने के प्रमाण नहीं दिया जायगा तब तक मैं आपके पास रह कर भी आपसे दूर रहूँगी।

सुखानन्दः- किन्तु मनोरमे! तुम्हारा यह कलंक दूर कैसे होगा?

मनोरमाः- स्वामी! जिस कर्मोदय ने आपका मेरा संयोग कराया, वही मेरा कलंक भी दूर करेगा।

सुखानन्दः- (सन्तोषपूर्वक) ठीक है प्रिये! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं! (कुछ सोचकर) हां मामा जी कहाँ हैं? पहले उनके दर्शन करना चाहता हूँ। (सहसा एक ओर से सेठ धनदत्त आते हैं। उनके पीछे मालिन भी है।)

धनदत्तः- (दूर ही से प्रसन्न स्वर में) ओ.....सुखानन्द कुमार?

सुखानन्दः- (उठकर, प्रसन्नता से) हाँ मामा जी।

(सुखानन्द सेठ धनदत्त के चरण छूता है। धनदत्त सुखानन्द के सिर पर हाथ रखते हैं।)

धनदत्तः- (सुखानन्द से) अरे.....यह कैसा भेष बनाया है तुमने?

सुखानन्दः- (मुस्कराते हुये) जिस भेष ने आप लोगों के दर्शन कराये, वह भेष कोई बुरा तो नहीं हो सकता मामा जी!

(सब हंसते हैं।)

धनदत्तः- अच्छा तो अब आप घर चलकर स्नानादि से निवृत्त होकर वस्त्रादि बदलिये। फिर वहीं बैठकर सब बात चीत करेंगे।

सुखानन्दः- (चलते हुये) अच्छा, चलिये।

(सबका एक ओर प्रस्थान)

दृश्य दसवाँ

स्थानः- सेठ धनदत्त का भवन। एक कक्ष में सुखानन्द विचार मग्न बैठे हैं। सहसा बाहर से मनोरमा जाती हुई दिखाई देती है।)

सुखानन्दः- (मनोरमा को जाते देख) मनोरमे!

मनोरमाः- (रुकती हुई) कहिये प्राणनाथ।

सुखानन्दः- (खिन्न मन से) मनोरमे! हम एक ही स्थान पर रहते हुयें यों अलग-अलग कब तक रहेंगे? कभी कभी तो तुम दो-दो दिन तक दिखाई नहीं देती। मैं तुम्हें देखने को ही तरसता रहता हूँ।

मनोरमाः- (दुखद स्वर में) यह भी मेरा दुर्भाग्य है स्वामी, जो आपकी सेवा से वंचित रहना पड़ रहा है। पर क्या किया जाये मेरे शिर लगा कलंक ही हमें अलग अलग रहने को बाध्य कर रहा है।

सुखानन्दः- (खीजकर) जब देखो तब कलंक-कलंक करती रहती हो। मेरी समझ में नहीं आता, कि आखिर यह कलंक कब धुलेगा।

मनोरमाः- हमें समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी- स्वामी! कुछ दिन धीरज रखना पडेगा।

सुखानन्दः- लेकिन यहां रहने से तो कुछ होना नहीं। यहाँ रहते रहते जी भी भर गया है। अब तो माता-पिता की भी याद आने लगी है, और वतन की भी।

मनोरमाः- मगर मामा जी जाने भी तो नहीं देते। वे तो सदा यही कहते रहते हैं कि जब तक आपके पिताजी यहाँ लेने को नहीं आ जायें, मैं नहीं भेजूँगा।

सुखानन्दः- (भावावेश में) नहीं, नहीं! अब पिताजी की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। उन्हें क्या पता कि हम लोग यहाँ हैं। बस मैं आज मामा जी को स्पष्ट कह देता हूँ। कि अब यहाँ नहीं रुकेंगे।

मनोरमाः- (नम्रतापूर्वक) आप तो बुद्धिमान हैं स्वामी! क्या मामा जी को नाराज करके जाना अच्छा रहेगा? आप स्वयं ही सोचिये कि यदि मामा जीवन में आकर मुझसे नहीं मिलते तो क्या हमारा पुनर्मिलन संभव था?

सुखानन्दः- (विचार कर) ठीक है। कुछ दिन और देखते हैं, फिर मामा जी से नम्रतापूर्वक कहना पड़ेगा। अच्छा अब तुम जा सकती हो।

(मनोरमा एक ओ जाती है, सुखानन्द लेट जाते हैं।)

दृश्य ग्यारहवां

स्थानः– सेठ धनदत्त का भवन! धनदत्त अपनी बैठक में अकेले विचार मग्न बैठे हैं।

धनदत्तः– (स्वतः) कर्मों की लीला विचित्र है। अनेक मुसीबतें उठाकर भी मनोरमा अपने शील पर कायम रही तो उसे अपना पति भी मिल गया। पति संयोग से बढ़कर स्त्री के लिये और आनन्द भी क्या होता है और फिर इतनी मुसीबतें और आफतें झेलने के बाद स्वतः ही पति का मिलन बड़ी आनन्द दायक घटना है शीलवती मनोरमा के लिये। यद्यपि पति संयोग से मनोरमा को महान हर्ष हुआ है; किन्तु व्यभिचार का जो झूंठा कलंक उस पर लगा है, वह उसके तन को जलाये डालता है। वैसे सुखानन्द को तो उस पर पूरा विश्वास है, मगर वह न जाने क्या चाहती हैं?

(सहसा घर का एक सेवक प्रवेश करता है)

सेवकः– (सविनय) श्रेष्ठिवर! वैजयन्ती नगरी से एक महीपाल नामक सज्जन आये हैं, और वे आपसे मिलना चाहते हैं।

धनदत्तः– (साश्चर्य, प्रसन्न होकर) 'श्रेष्ठी– महीपाल आये हैं.....?

(सेवक से) जाओ, उन्हें सादर यहाँ ले आओं।

(सेवक जाता है, तथा कुछ ही देर में श्रेष्ठी महीपाल को साथ लेकर पुनः लौट आता है।)

धनदत्तः– (खडे होकर, महीपाल का स्वागत करते हुये) आइये पधारिये महीपाल जी! मेरे अहोभाग्य हैं, जो आज आपके दर्शन हुये। (बैठने का संकेत करते हुये) बिराजिये। (महीपाल बैठते हैं, बाद में धनदत्त भी अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।)

महीपालः– आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई, आप प्रसन्न तो हैं?

धनदत्तः– (हर्षपूर्वक) सब जिनेन्द्र देव की कृपा है।

महीपालः– (मुझे एक स्थान पर पता चला कि सुखानन्द और मनोरमा दोनों ही आपके यहां पहुंच गये हैं। मगर वे दिखाई नहीं देते। कृपा कर सुखानन्द को बुलवाइये ना।)

धनदत्तः– (प्रसन्न स्वर में) हाँ, हाँ! अभी लीजिये! (सेवक से) सेवक! जरा सुखानन्द कुमार से कहो कि आपके पिताजी आये हैं, और आपसे मिलना चाहते हैं।

सेवकः– (सविनय) जो आज्ञा श्रेष्ठिवर।

(सेवक का प्रस्थान)

महीपालः– (धनदत्त से) क्या बताऊँ धनदत्त जी! मेरे ही कारण सुखानन्द और मनोरमा को इतने कष्ट उठाने पड़ें हैं। तीन माह से ढूँढते-ढूँढते हैरान हो गया, तब आज यहाँ आने पर इनका पता चला।

धनदत्तः– होनहार की बात है महीपाल जी! इसमें किसी का क्या दोष? जो कुछ होना था वह हुआ। हाँ आपको भी बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। अब आप पहले आराम कीजिये,

थके हुये आये हैं।

महीपालः– नहीं, नहीं! पहले मैं सुखानन्द और मनोरमा को देखना चाहता हूँ। उनको देखे बिना मन को चैन नहीं हैं।

(सहसा एक ओर से सुखानन्द आकर पिता के चरण छूते हैं।)

महीपालः– (खड़े होकर, सुखानन्द को छाती से लगाते हुए) बेटे! आज मुद्दत बात तुम्हें देखकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

किन्तु तुम अकेले ही आये, मनोरमा क्यों नहीं आई? वह कहां हैं?

धनदत्तः– (महीपाल से) श्रेष्ठिवर! मनोरमा इनसे अलग रहती हैं। उसके विषय में ये क्या जाने?

महीपालः– (साश्चर्य) अलग रहती है? ऐसा क्यों?

धनदत्तः– उसका कहना है कि जब तक मेरा न्याय नहीं होगा, तब तक मैं पति से सम्बन्ध नहीं रखूँगी।

महीपालः– (सेवक से) सेवक! तुम जरा मनोरमा को तो बुला लाओ।

सेवकः– (सादर) जो आज्ञा श्रीमान्!

(सेवक का प्रस्थान)

सुखानन्दः– (महीपाल से) पिताजी! आप यहाँ तक कैसे आ पहुंचे?

महीपालः– बेटे! तुम्हारे योगी होकर चले आने की बात वैजयन्ती नरेश के कानों तक पहुंची तो मुझे बुलाकार उन्होंने आदेश दिया कि जब आप अपने पुत्र और पुत्रवधू को खोज कर वापस नहीं ले आते, तब तक आप यहाँ नहीं रह सकते।

सुखानन्दः– तो फिर आपको हमारे, यहाँ रहने का पता कैसे चला?

महीपालः– बेटे! तुम्हें खोजते-खोजते तीन महीने हो गये, और तुम्हारा कोई पता नहीं चला, तो मैं नदी में डूबने को तैयार हो गया। उसी समय एक व्यक्ति ने वहाँ पहुँच कर तुम्हारा पता बताया, तो मैं यहाँ चला आया।

सुखानन्दः– तबतो आपको हमारे खातिर बड़े कष्ट उठाने पड़े पिताजी।

(सहसा एक ओर से मनोरमा आ जाती है और महीपाल के समक्ष शिर झुका कर खड़ी रह जाती है।)

महीपालः– (मनोरमा से) बेटी! मुझे क्षमा करो! मैंने तुम्हारे साथ घोर अन्याय किया है।

मनोरमाः– (नम्रता पूर्वक) पिताजी! सन्तान का धर्म माता-पिता को क्षमा करने का नहीं; किन्तु उनकी आज्ञा पालन करने का होता है। जैसा भाग्य में लिखा था, हो गया। इसमें किसी का क्या दोष?

महीपालः– (सुखानन्द से) बेटे! अब शीघ्र घर चल कर अपनी माता को तसल्ली दो। वह तुम्हारे बिना रो-रोकर दिन बिता रही है।

सुखानन्दः– लेकिन पिताजी! माता जी के समक्ष अब मनोरमा कैसे जायेगी। वे कलंकिनी को घर में वापस कैसे रख सकेंगी?

महीपालः– बेटे! इसका न्याय हो चुका है। वह एक दूती का षड़यंत्र था। राजा ने न्याय करके दूती तथा राजकुमार को देश के बाहर निकाल दिया है।

धनदत्तः– (प्रसन्न स्वर में) तब तो अन्त में शाल की जय हुई।

सुखानन्दः– धन्य है महाराज परमसेन! जिन्होंने न्याय के लिये अपने पुत्र की भी परवाह नहीं की।

महीपालः– (मनोरमा से) पुत्री! अब तुम घर चलो। और अपनी सास की खोई खुशी वापस लौटाओ।

मनोरमाः– (करबद्ध) पिताजी! आपकी आज्ञा पालन करने को मैं तैयार हूँ। परन्तु मेरी एक प्रार्थना है। मैं घर नहीं रह कर अलग रहना चाहूँगी। कारण मैं कलंकिनी हूँ।

महीपालः– लेकिन तुम्हारा कलंक तो दूर हो चुका है बँटी।

मनोरमाः– केवल आपकी तरफ से।

महीपालः– महाराज परमसेन ने भी तो न्याय कर दिया है।

मनोरमाः– किन्तु वैजयन्ती के नागरिकों को कैसे विश्वास होगा।

महीपालः– तुम कैसे विश्वास कराना चाहती हो बेटी।

मनोरमाः– समय इकसार नहीं रहता पिताजी! जब मेरा अच्छा समय आयेगा तब स्तवतः ही सब योग भी बन जायेंगे। पहले क्या कहा जा सकता है? मुझे अपने शील पर पूर्ण विश्वास है। और मेरा धर्म ही मेरा साथ देगा।

महीपालः– अच्छा बेटी! यदि तुझे इतना ही दृढ़ विश्वास है तो ऐसा ही किया जायेगा। किन्तु यहां से अब शीघ्र चलना आवश्यक है।

धनदत्तः– (उठते हुये) आइये! पहले स्नानादि एवं दर्शन से निवृत्त हो भोजन कीजिये,

अंक तीसरा

दृश्य पहला

स्थानः- वैजयन्ती का राज दरबार। महाराज परमसेन सिंहासन पर विराजे हैं। मन्त्रीगण एवं अन्य दरबारी लोग यथास्थान पर बैठे हैं।

परमसेनः- (प्रधान से) प्रधान जी! विदित हुआ है कि महीपाल सेठ अपने पुत्र एवं पुत्र वधू को लेकर आ गये हैं।

प्रधानः- (सविनय) जी हाँ महाराज! लेकिन यह भी सुना है कि उनकी पुत्रवधू मनोरमा को अलग मकान में ठहराया गया है।

परमसेनः- (साश्चर्य) अलग मकान में ठहराया है? इसका कारण?

प्रधानः- महाराज! मनोरमा का कहना है कि जब तक मेरा न्याय नहीं होगा, मैं घर में प्रवेश नहीं करूँगी।

परमसेनः- न्याय.....! कैसा न्याय? प्रधान जी! न्याय तो हम कर चुके।

प्रधानः- महाराज! वह कहती है कि जब तक मैं सर्वसाधारण के समक्ष निर्दोष साबित नहीं होती, तब तक श्वसुरजी के घर नहीं जा सकती।

(सहसा कुछ कोलाहल सुनाई देता है।)

परमसेनः- प्रधान जी! यह कोलाहल कैसा है?

(प्रधान उठकर जाना ही चाहते हैं, कि एक प्रहरी प्रवेश करता है।)

प्रहरीः- (साभिवादन) महाराज! नगर के कुछ लोग फरियाद करने आये हैं तथा वे दरबार में आना चाहते हैं।

परमसेनः- (आदेश पूर्वक) उन्हें आने दिया जाये।

(प्रहरी सविनय जाता है। तथा थोड़ी देर बाद कुछ नागरिक प्रवेश करते हैं।)

नागरिक1:- (करबद्ध) दुहाई है महाराज! दुहाई है! नगर पर भारी संकट आ गया है, उसके निवारण शीघ्र उपाय कीजिये, प्रजा पालक!

परमसेनः- (साश्चर्य) नगर पर कैसा संकट आ गया है मेरे प्रिय नागरिकों! जरा साफ-साफ बयान करो।

नागरिक1:- (करबद्ध) महाराज! नगर के समस्त द्वार सहसा बन्द हो गये हैं। किसी तरह खुल नहीं पा रहे हैं। नगरवासी गहरी विपत्ति में पड़े हैं महाराज!

परमसेनः- तो क्या द्वार खुलवाने का कोई उपाय नहीं किया गया?

नागरिक2:- (सादर) उपाय तो बहुत कुछ कियो जा चुके हैं महराज! यहां तक कि हाथियों के मस्तक भी भिड़ां दिये गये। लेकिन अब तक कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ। समस्त व्यापार एवं करोबार ठप्प पड़ा है। कृषक लोग अपनी खेती बाड़ी में नहीं जा पा रहे हैं।

परमसेनः- (प्रधान से) प्रधान जी! इसका क्या कारण हो सकता है-

प्रधानः- (कुछ क्षण विचार कर, सादर) महाराज! मेरी समझ में तो कोई दैवी प्रकोप मालूम होता है।

परमसेनः- लेकिन प्रधान जी! हमारे राज्य में किसी प्रकार का अन्याय नहीं होता। फिर भला दैवी प्रकोप क्यों होगा? और यदि ऐसा ही है, तो इस प्रकोप के निवारणार्थ शीघ्र उपाय करना चाहिये। वरना हम सब भारी विपदा में पड़ जायेंगे।

प्रधानः- (नम्र स्वर में) महाराज! जितनी जुबान उतनी ही बातें हैं। कोई कहता है, मनोरमा कलंकिनी है। उसके आने से यह तबाही हुई है। इसी प्रकार कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। मगर बात कुछ भी हो, उपाय तो शीघ्र करना ही पड़ेगा। (कुछ रुककर) महाराज! पहले तो कुछ कृत्रिम उपायों का सहारा लिया जाये। यदि फिर भी द्वार नहीं खुलें तो धार्मिक अनुष्ठान कराये जायें, तथा सारे पुरवासी उनमें भाग लें।

परमसेनः- (उठते हुये) ठीक है, प्रधान जी! अब आप इन लोगों के साथ जाकर शीघ्र के र्ं उपाय कीजिये।

प्रधानः- (सविनय) जैसी आज्ञा महाराज।

(महाराज परमसेन का शीघ्रता से एक ओर प्रस्थान! दूसरी ओर अन्य सब लोग जाते हैं।)

दृश्य दूसरा

स्थानः- वैजयन्ती का राज भवन! महाराज परमसेन का शयन कक्ष! महाराज परमसेन शैया पर चिन्तामग्न बैठे हैं।

परमसेनः- (हताश भाव से स्वतः) ओह! कैसी भारी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है। आज पूरे सात दिन बीत गये। अनेकों उपाय कर लिये, मगर द्वार टस से मस नहीं हुये। मेरे प्रिय प्रजाजनों को गहरे संकट का सामना करना पड़ रहा है। नगर में जल का अभाव हो रहा है। व्यापारियों का आवागमन बन्द हो जाने से सारा व्यापार ठप्प होने लगा है। पशुओं का घास-चारा भी दुर्लभ हो गया है। (निराश होकर) प्रभो! यह कौन से अन्याय का बदला मिल रहा है। (ऊपर की ओर देखते हुये करबद्ध) दया करो प्रभो! दया करो! प्रजा का यह संकट मुझसे देखा नहीं जाता।

(परमसेन शयन करते हैं एवं कुछ ही देर में निद्रा में तल्लीन हो जाते हैं। जब रात्रि का अन्तिम प्रहर आता है तो वे स्वप्न देखते हैं।)

स्वप्न (नैपथ्य की आवाज)

देवः- (नैपथ्य से) यदि कोई पतिव्रता स्त्री से कच्चे सूत के धागे द्वारा छलनी से जल सींच कर द्वार पर छिड़के तो द्वार खुल सकते हैं।

(आवाज बन्द हो जाती है, सहसा महाराज चौंक कर उठ बैठते हैं।)

परमसेनः- (स्वप्न याद करके) ओह.....! यह कैसा स्वप्न था? संभव है किसी

देवता ने आकर यह चेतावनी दी हो? और इन्द्र महाराज ने किसी सती नारी की परीक्षा हेतु यह ब्यूह रचा है। (कुछ सोचकर) खैर.....प्रयत्न तो करना ही चाहिये। (उठते हुये) प्रातःकाल होने को है। पहले स्नानादि एवं जिनेन्द्र पूजन से निवृत्त होलूं। उसके बाद प्रधान को बुलाकर समस्त नगर में ढ़िंढोरा पिटवाने को कहूँ, ताकि नगर के समस्त नर-नारी द्वारों पर पहुंच जायें।

(शीघ्रता से एक ओर प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

स्थानः- वैजयन्ती का राज दरबार! महाराज परमसेन चिन्तित अवस्था में सिंहासन पर विराजे हैं। मंत्री आदि भी यथास्थान बैठे।

परमसेनः- (गहरे खेद के साथ प्रधान से) आखिर नगर के द्वार नहीं खुले प्रधान जी! क्या नगर में एक भी पतिव्रता स्त्री नहीं है?

प्रधानः- (सविनय) महाराज! आप तो स्वयं ज्ञानी हैं जैन शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। शील के लक्षणें की पूर्ण जानकारी है आपको! शील में किन किन क्रियाओं से दोष लगता है, यह बात प्रत्येक स्त्री नहीं जानती। इसलिये वे पूर्ण शीलवती होने से वंचित रह जाती है।

शीलव्रत के पालन में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। पतिव्रता भी वही स्त्री होती है, जो अपने पति पर सन्तुष्ट रहती है। पति सेवा को अपना धर्म समझती है। चाहे पति कुरूप या रोगी ही क्यों न हो, निर्धन एवं दरिद्री ही क्यों न हो, उसका सदा साथ देती है। संकट के समय में धैर्य बंधाती है। कैसी ही मुसीबतें आये, कभी अपने पतिव्रत धर्म से विचलित नहीं होती, ऐसी ही स्त्री इन दरवाजों को खोल सकती है महाराज!

परमसेनः- तब क्या आपके विचार में कोई स्त्री बाकी बची है, जो द्वार पर नहीं पहुंची हो?

प्रधानः- (सोचकर) जी हां, महाराज! अभी सुखानन्द कुमार की पत्नी मनोरमा की ओर किसी का ध्यान नहीं आया है। कारण उसके शील पर लांछन लगा हुआ है।

परमसेनः- (हर्ष पूर्वक) बस, बस प्रधान जी! मेरी समझ में भी आ गया कि यह परीक्षा की कसोटी उसी के लिये इन्द्र महाराज द्वारा तैयार कराई गई है। मुझे पूरी आशा है कि मनोरमा के द्वारा द्वार अवश्य खुल जायेंगे।

प्रधानः- (नम्रता पूर्वक) महाराज! आपके विचार तो मान्य हैं। पर प्रजा की जुबान को बन्द नहीं किया जा सकता।

परमसेनः- (जिज्ञासा पूर्वक) वह कैसे?

प्रधानः- (भेद बताते हुये) महाराज! जब भी मनोरमा को लाने का जिक्र आया, प्रजा जनों ने मखौल उड़ाना शुरू कर दिया। वे कहने लगे कि देवों द्वारा कीलित दरवाजों को

एक कलंकिनी स्त्री से छुपाकर क्या प्रलय कराना चाहते हैं? इसी प्रकार भांति-भांति की बातें कहते हैं पुरवासी!

परमसेनः- (दृढ़ स्वर में) लेकिन मनोरमा कलंकिनी नहीं है। उस पर मिथ्या कलंक लगाया गया है। जिसका निर्णय और न्याय हो चुका है। (आदेश पूर्वक) प्रधान जी! मनोरमा को बुलाने की शीघ्र व्यवस्था की जाये। (कुछ सोचकर) नहीं, नहीं प्रधान जी! मनोरमा को लाने हम स्वयं जायेंगे।

(उठते हुये) अच्छा, चलिये! हम स्वयं चलते हैं।

(आगे महाराज परमसेन एवं उनके पीछे प्रधान एवं अन्य लोग जाते हैं।)

दृश्य चौथा

स्थानः- मनोरमा का निवास स्थान! मनोरमा विचार मग्न बैठी है। एक दासी प्रवेश करती है।

दासीः · (सविनय मनोरमा से) कुवरानी जी! आपसे मिलने के लिये स्वयं वैजयन्ती नरेश पधारे हैं।

मनोरमाः- (चौंककर उठती हुई) क्या कहा? महाराज परमसेन पधारे हैं?

दासीः- जी हां।

मनोरमाः- तो तू जाकर उन्हें सादर यहाँ ले आ।

दासीः- (सादर) जैसी आज्ञा कुवंरानी जी।

(दासी का प्रस्थान)

मनोरमाः- (स्वतः) वैजयन्ती नरेश का मेरे पास आने का क्यां प्रयोजन है? मुझे क्या कहने आये हैं वे?

(एक स्वर्ण पीठिका एवं कुछ अन्य पीठिकायें लाकर रखती है। सहसा महाराज परमसेन तथा प्रधान मंत्री प्रवेश करते हैं।)

मनोरमाः- (साभिवादन) पधारिये महाराज! आज पुत्री के घर आने का कैसे कष्ट किया श्रीमान् ने?

परमसेनः- (स्वर्ण पीठिका पर बैठते हुये) बेटी! यह तो तुम्हें विदित हो ही गया होगा कि हमारी नगरी के चारों द्वार बहुत दिन से बन्द पड़े हैं, जिससे सबको भारी कष्ट हो रहा है?

मनोरमाः- (सादर) जी हाँ महाराज! लेकिन क्या द्वार अभी तक नहीं खुले?

परमसेनः- नहीं बेटी! मगर हमें किसी ने स्वप्न में बताया था कि कि कोई पतिव्रता शीलव्रती स्त्री छलनी से पानी खींचकर दरवाजों पर छिड़के तो द्वार खुलें। सो नगर की समस्त नारियों ने इस प्रकार प्रयत्न किया, किन्तु किसी से भी द्वार नहीं खुले। तब हम गहरी चिन्ता में पड़ गये। किन्तु प्रधान जी ने सहसा तुम्हारा ध्यान दिलाया। बस तुम्हारा ध्यान आते ही हमें विश्वास हो गया कि यह शुभ कार्य तुम्हारे द्वारा ही होगा। इसलिये

हम लोग तुम्हें कहने आये हैं। अब तुम किसी तरह का विलम्ब न करके शीघ्र द्वार पर चलने की स्वीकृति दो।

मनोरमाः- महाराज! आप सारी प्रजा के पिता हैं। अतः मेरे भी पिता तुल्य हैं। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य हैं। किन्तु पतिदेव की आज्ञा के बिना मैं कैसे द्वार तक जा सकती हूं। उनकी आज्ञा के बिना तो मैं घर के बाहर भी पांव नहीं रख सकती।

परमसेनः- (सराहना करते हुये) धन्य, मनोरमा! वास्तव में तुम पतिव्रता हो। तुम समान सर्व श्रेष्ठ नारी पर देश को गर्व है।

(कुछ सोच कर) ठीक है बैटी! हम तुम्हारे पतिदेव से कहेंगे। वे तुम्हें अवश्य आज्ञा दे देंगे।

मनोरमाः- (करबद्ध) जैसी आज्ञा महाराज! कल प्रभात के समय नगर के समस्त नर-नारी दरवाजों पर उपस्थित होना चाहिये। पतिदेव की देव की आज्ञा मिलने पर मैं अवश्य पहुंच जाऊंगी।

परमसेनः- (उठते हुये) अच्छा बेटी! अब हम चलते हैं।

(महाराज तथा प्रधान वगैरह का प्रस्थान)

दृश्य पांचवाँ

स्थानः- जिन मंन्दिर! मनोरमा जिनेन्द्र देव के समक्ष खड़ी प्रार्थना कर रही है।

प्रार्थना

हे प्रभो जिन देव मेरी, प्रार्थना सुन लीजिये।
इस महा संकट से अब उद्धार मेरा कीजिये।।
है परीक्षा आज मेरे शील की संसार में।
हो ना नारी धर्म दूषित, बात यह चित दीजिये।
हूँ कलंकित आज मैं, दुनिया की नजरों में प्रभो।
सत्यता का अब प्रगट, परिणाम जल्दी दीजिये।।
शील पर संसार का, विश्वास ही उठ जायेगा।
गर खुले नहीं द्वार कीलित, नाथ यह सुन लीजिये।।
अंजना, सीता के संकट को प्रभो तुमने हरा।
आज मेरी लाज रह जाये, यतन वह कीजिये।।
आपका विश्वास लेकर ही, वहाँ जाती हूँ मैं।
धर्म की नैया को भगवान, पार जल्दी कीजिये।

(प्रार्थना समाप्त करके भगवान के चरणों में नत मस्तक होकर मनोरमा एक ओर चली जाती है।)

दृश्य छटवां

स्थानः– वैजयन्ती का बन्द द्वार! एक ओर महाराज परमसेन एवं अन्य राज्याधिकार खडे हैं तथा दूसरी ओर नागरिकों की भारी भीड़ जमा है। महाराज का आदेश पाकर प्रधान मंत्री नागरिकों को सम्बोधन करते हैं।

प्रधानः– (नागरिकों से) प्रिय नगर वासियों! नगरी के द्वार बन्द हुये आज कई दिन होने आये, पर अनेकों उपाय कर लेने पर भी द्वार नहीं खुले। जिससे सभी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा रहा है।

महाराज को किसी ने स्वप्न में कहा था, कि यदि कोई शीलव्रती स्त्री कच्चे सूत के धागे से छलनी में नीर सींच कर द्वारों पर छिड़के तो द्वार खुलें। सो वह उपाय भी कर के देख लिया गया, किन्तु सफलता नहीं मिली। वैसे तो नगर की सभी स्त्रियां प्रयत्न कर चुकी हैं, किन्तु श्रेष्ठि महीपाल की पुत्रवधू मनोरमा अभी नहीं आई थी। महाराज के अनुरोध पर आज मनोरमा प्रयास करेगी।

इससे बढ़कर मनोरमा के पतिव्रत धर्म की और कसौटी भी कौन सी होगी? यदि ऐसा करने से द्वार खुल गये तो मनोरमा पूर्ण शीलवती सिद्ध होगी। और मनोरमा ने जो यह प्रण कर रखा है, कि जब तक मैं संसार के सामने शीलव्रती सिद्ध होऊँगी, घर में नहीं रहुँगी।

अतः उसका प्रण भी पूरा हो जायेगा। आप लोग कुछ देर शान्ति पूर्वक खडे रहें।

(प्रधान चुप हो जाते हैं। एक ओर से मनोरमा प्रवेश करती हैं।)

मनोरमाः– (आगे आकर, प्रभु स्मरण करती हुई) प्रभो! आज मेरी लाज आपके हाथ है। मैंने जब से श्री मुनिराज से शीलव्रत धारण किया है, उसके पालन का सदैव ध्यान रखा है। अनेक बार आफतें आईं, किन्तु मैंने अपने धर्म पर आंच तक नहीं आने दी। शील की रक्षा के लिये मैंने अपने प्रणों की भी परवाह नहीं की।

भगवान्! आज संसार के सामने अपने शील, अपने पतिव्रत धर्म की परीक्षा देने को मैं उद्यत हुई हूँ। आपने सीता, अंजना, द्रौपदी आदि भी सहायता की थी। तब क्या इस दासी को भुला देंगे?

प्रभो! मैं आप ही का विश्वास लेकर आई हूं। अतः मुझे बल प्रदान कीजिये कि मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँ।

लाज दासी की अब तो बचा दो प्रभो।
धर्म नैया किनारे लगादो प्रभो।।
देवों कीलित नगर द्वार फिर से खुलें।
शील का आज जलवा दिखा दो प्रभो।।

(मनोरमा कच्चे सूत की डोरी से छलनी को बांधकर कुए में डालती है। कुछ

ही क्षणें में छलनी में नीर भर कर आ जाता है, जिसे ले जाकर द्वार पर छिडकती है। तथा द्वार के पांव का अंगूठा छुवाती है। सहसा द्वार खुल जाता है। आकाश से पुष्प वृष्टि होती है। शील धर्म की जय जय कर से आकाश गूंज उठता है।)

।।समाप्त।।

गाना

शील धरम की महिमा गाते, आज सभी नर नारी हैं।
देवलोक में शीलवती की, हुई प्रशंसा भारी है।।
कीलित द्वार खुले नगरी के, चंहु दिश जय-जयकार हुआ।
देवों ने की पुष्पवृष्टि, सबही को हर्ष आपार हुआ।।
है मनोरमा शीलवती पतिव्रता, सभी ने पहिचाना।।
विजय धर्म की होती आखिर, सबने यूँ मन में जाना।
राजा रानी और अनेकों, बने शीलव्रतधारी है।।
देवलोक में शीलवती की हुई, प्रशंसा भारी है।
हुई अनेकों सतियां जग में, उनका यश गाता संसार।।
अपने प्रण की थी पक्की, था शील धरम से उनका प्यार।
पति सेवा से बढ़कर कोई, नारी का है धर्म नहीं।।
निज पति में सन्तोष करें, है शील धरम का धर्म यही।
शील-धर्म को पालो सबही, शील धरम सुखकारी है।।
देवलोक में शीलवती की हुई प्रशंसा भारी है।।
।।शील धर्म की जय।।

समाप्त